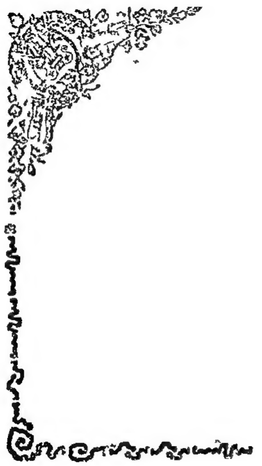


ईश्वरी



विषय सूची ।

समर्पण ।

अग्रवाल वंश भूषण, समाज सुधारक

तथा

राष्ट्र भाषा हिन्दी के अनन्य प्रेमी

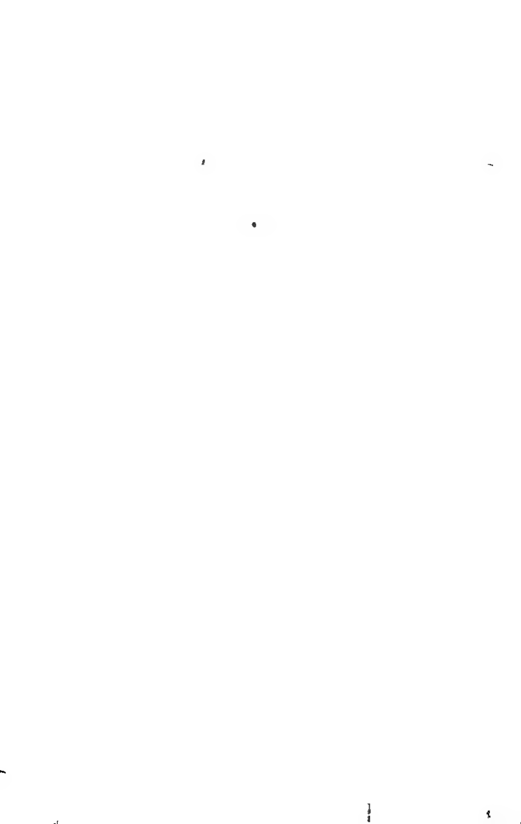
देशभक्त श्रीमान् सेठ जमनालाल जी बजाज

के

चरकमलों में

लेखक का यह तुच्छ उपहार

सादर समर्पित है ।



प्रस्तावना।

इस पुस्तक की भूमिका लिखना मैं आवश्यक नहीं समझता, कारण, कि पुस्तकगत विषय मूल विषय की भूमिका के तुल्य भी नहीं। करन्सी या मुद्रा-प्रचलन जैसा क्लिष्ट विषय साधारण रीति से समझा देने की शक्ति यद्यपि मुझ में नहीं है तदपि जो कुछ प्रयास किया गया है वह इसी दृष्टि से कि हिन्दी साहित्य के लिए यह विषय अपरिचित अथवा नवीन नहीं तो प्रारंभिक अवश्य है। मेरी इच्छा थी कि प्रत्येक विषय विस्तार पूर्वक समझायाजाय, किन्तु कई कारणों से ऐसा न किया जा सका। आशा है कि इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण तक पाठकगण हमें इस त्रुटि के लिये क्षमा करेंगे।

मेरा विचार था कि करन्सी और बैंकिंग दोनों सम्मिलित प्रकाशित हों इसी से बहुत पहले से इस प्रकार का विज्ञापन दिया जा चुका था। दुर्भाग्य से मैं बीच में अस्वस्थ हो गया और कई मास तक कठिन रोगक्रान्त रहा। यह विलम्ब देखकर मेरे पास बीसियों पत्र इस आशय के आये कि पुस्तक यथा शीघ्र प्रकाशित हो। इस समय तक करन्सी के प्रकरण ही चल रहे थे। ऐसी दशा में बैंकिंग के लिए और अधिक ठहर कर विलम्ब करना कहा तक उचित होता, यह सहृदय पाठक स्वयमेव विचार करलें।

प्रस्तुत पुस्तक की विषय सामग्री एकत्र करने में मुझे इसी विषय की अनेक अंग्रेजी पुस्तकों और समाचार पत्रों की सहायता लेनी पडी है विविध हिन्दी मासिक तथा समाचार पत्रों का अवलम्बन लेना पडा है। इन सबके लिए मैं उनका अतीव कृतज्ञ हूं। इन पत्रों का नामोल्लेख मैंने यथा संभव कर दिया है। तथापि भूल से जो छूट गया हो उसके प्रति मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मै समझता हू कि मेरी इस कृति में नवीनता नहीं है
न ता इसके भावों में विशेषता है और न लेखन चातुर्य ही है
मैने इस पुस्तक मे अपनी ओर स कुछ नहीं लिखा है। मेरा का
तो यही है कि मैंने इस विषय की बिखरी हुई सामग्री को एक
अवश्य कर दिया है। इस कार्य मे भी घोर त्रुटिया हो गई है
प्रबधक्रम यथोचित नहीं रह सका है और शीघ्रता में विदे
विनिमय जैसा आवश्यक अग भी पूरी तरह वर्णित नहीं हो स
है। इन सब बातों के लिए मुझ खद है। कार्य एक दम प्रा
भिक होने के कारण यदि मै इन त्रुटियों तथा प्रेस सम्बंधी भू
के लिए क्षमा प्रार्थी हाऊ तो धृष्टता न हागी।

हिन्दी साहित्य के परम पूजनीय लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक श्री
कन्नोमल एम ए जज रियासत धौलपुर एव श्रीयुत शिवप्रश
मोदी ए. सी आर ए आडिटर ऑफ एकाउन्ट्स धौलपुर रा
ने कष्ट उठाकर इस कृति में अपने 'एक शब्द' तथा 'भूमिका'
योग देकर पुस्तक के गौरव को तो बढाया ही है साथ ही लेख
को भी समुत्साहित एव कृतज्ञतावद्ध किया है।

स्वनाम धन्य परमोदार देशभक्त श्री जमनालालजी बजाज
अपनी क्षुद्रकृति समर्पित कर मुझे सबसे अधिक सतोष हुआ है

अन्त में जिन के उत्साह सम्वलन से मुझे इस पुस्तक
लिखने का साहस हुआ तथा जिनके अपरिमित व्यय से अ
यह रचना इस रूप में पाठकों के करकमलों की शोभा बढा रही
उन हिन्दी भाषा के अनन्य प्रेमी सरल हृदय शुभ चिन्तक श्री
अमरचंदजी वैद के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता हू

आगरा, गौरीशङ्कर शुक्ल,

भूमिका।

गौरीशंकर जी की बनाई हुई "करन्सी" की हिन्दी भाषा की पुस्तक के कुछ प्रकरणो को मैंने पढ़ा। इसकी भाषा शुद्ध व सरल है। इसकी रचना साहूकारी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने वालों के लाभार्थ की गई है। उन्होंने ग्रेशम महाशय के सिद्धान्तों के मुख्य भावार्थ को बड़े सरल शब्दो मे व्यक्त किया है। सिद्धान्तों के मूल का मतलब न छोड़ते हुये उन्होंने ऐसे शब्द प्रयोग कीये है कि ग्रेशम महाशय के सिद्धान्तों का आशय समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। देखिये— यदि एक ही धातु के सिक्के जो तोल और रूप मे भिन्न प्रकार के हो एक साथ एक ही मूल्य में प्रचलित किये जायें तो खराब सिक्के अच्छे सिक्कों को प्रचलन से हटा देंगे किन्तु अच्छे, खराब सिक्को को प्रचलन मे से कभी नहीं हटा सकेंगे" इस की व्याख्या के कुछ अंश इस प्रकार हैं—सिक्के का सब से आवश्यक स्वरूप यह है कि उसका प्रचलन हो सके—एक के पाससे दूसरे के पास जासके। जब कोई मनुष्य कोई वस्तु अपने पास से जुदा करना चाहता है तो जब उस विनियम मे उस से अधिक मूल्य की वस्तु प्राप्त हो जाती है तब कहीं वह उसमे कम मूल्य की वस्तु देता है। आधुनिक बैंकिंग प्रणालियो का विकास होने से पूर्व लोग लोहे की सन्दूकों में सिक्के इकट्ठ करके रखते थे और इस के लिये वे सब से नये और भारी वजन के सिक्के छांट कर रखते थे। विज्ञान का प्रचार हो जाने पर भी बहुत से मनुष्य अब भी जब कि उनके पास कोई सिक्का आता है तो यद्यपि उन से कोई लाभ नहीं उठाते तथापि यही लालसा रहती है कि उन्हे वही सिक्का मिले

ही टकसाल में बन कर आया हो—सराफ आदि जो सिक्कों या ईंटो को बाहर भेजते थे उन्हे सिक्कों की कमी को पूरा करना पड़ता था क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय व्यापारमें सिक्के सदैव तोलकर भेजे जातेहैं नकि गिन कर। तीसरी बात धोखे बाजी की थी। जब कि बहुत थोड़ा अवसर परीक्षा के लिये दिया जाता था। थोडासा मुनाफा अपने लिये लेकर नये सिक्के प्रचलन के सिक्को के मूल्य के बराबर कर दीये जाते थे। यहीं तब ग्रेषम के सिद्धान्त का प्रयोग उसके साधारण रुप में होता हैं। भारी सिक्के देश में से नहीं प्रत्युत प्रचलन में गायब हो जाते है, कुछ का निर्यात हो जाता है और कुछ गला डाले जाते हैं, शेष जमा रख लिये जाते है. कुछ का वजन चालाकी से कम कर दिया जाता है अर्थात् खराब सिक्का अच्छे सिक्के को प्रचलन से हटा देता है। इसी प्रकार दूसरे सिद्धान्तों को भी बड़े सरल शब्दों में व्यक्त किया है। आगे पाचवे छटे व सातवे प्रकरणों में भारतीय सिक्कों का इतिहास, भारत मे सोने चादी और ताबे आदि के सिक्कों का वर्तमान प्रचलन तथा भारतीय मुद्रा पर महायुद्ध का जो प्रभाव पड़ा हे उन्हें क्रमानुकूल बडी ही अकाट्य युक्तियों से शुद्ध भाषा में व्यक्त किया है और साथ साथ आवश्यकतानुसार कई उपयोगी नकशे लगा कर पुस्तक को और भी उपयोगी बना दिया है। ऐसी पुस्तक हिन्दी भाषा मे मेरे कम देखने मे आई है, मुझे पुर्ण आशा है कि हिन्दी भाषा के प्रेमी और विशेष कर साहूकारी की व्यावहारिक शिक्षा के जिज्ञासु इस से अवश्य लाभ उठावेंगे।

शिवप्रसाद मोदी ए सी. आर ए.

ओडीटर आफएकौन्टस धौलपुर स्टेट,

एक शब्द।

पण्डित गौरीशकर शुक्ल—सम्पादक धर्माभ्युदय, ने 'करन्सी' नामक पुस्तक लिख कर हिन्दी ससार का बडा उपकार किया है। पुस्तक अपने ढग की नई है। इस विषय की एसी उपयोगी पुस्तक अभी तक देखने म नहीं आई है। सुयोग्य लेखक न सिक्का चलन विषय की जटिल समस्या की उलझन अच्छी तरह सुलझाई है, हुण्डियों के लेन देन और भुगतान के विषय को भी भली भाति समझाया है—फलत॰ व्यापार विषय की अनेक बातें लिखी हैं जिन के जानने से व्यापारियों को अत्यन्त लाभ हो सकता है। मैं आशा करता हू कि हिन्दी ससार में विशेपत व्यापार शिक्षा प्रेमियों में इस पुस्तक का अच्छा आदर होगा।

कन्नोमल एम॰ ए॰



Banking & Currency.

बैंकिंग और करन्सी।

पहला प्रकरण

धन के विविध कार्य तथा गुण।



सार में ऐसी एक ही पाठशाला है जहां पर बैंकिंग अर्थात् महाजनी की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है, और वह पाठशाला है—बैंक।

इस व्यावहारिक शिक्षा के अतिरिक्त विद्यार्थी को पुस्तकों द्वारा भी इस विषय का अध्ययन करना चाहिये, क्योंकि इस श्रेणी के पुरुषों को दोनों प्रकार से शिक्षित होना अत्यावश्यक है। किंतु यदि कोई मनुष्य व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा से किसी बैंक में प्रवेश करे, और वहां अपना अधिकांश जीवन व्यतीत करदे तो भी वह वहां कुछ नहीं सीख सकता, कारण प्रत्यक्ष है कि जब तक वह महाजनों से कार्य का परिज्ञान, उनकी कार्य कुशलता, कार्य की आन्तरिक पेचीदि

गियां, बैंक-व्यापार तथा अन्य ऐसी ही आवश्यक बातों का पूरा २ रहस्य न समझले तब तक वह बैंक से कोई लाभ नहीं उठा सकता। केवल लेखक या क्लर्क बन जाने से ही बैंकिंग जैसा जटिल विषय परिज्ञान नहीं हो जाता। यदि वह कार्य सीखता जाय और साथ ही तद्विषयक पुस्तकों का अवलोकन भी करता जाय तो निःसन्देह वह कार्य कुशल होगा, वह सच्चा साहूकार होगा। पुस्तकें उसके अनुभव को परिपक्व कर देती हैं। हम यह बात स्वीकार करते है कि इस कार्य मे व्यावहारिक शिक्षा ही मुख्य है तथापि यह भी स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस विषय के महत्व पूर्ण सिद्धान्त और विचार केवल पुस्तकों द्वारा ही सीखे जा सकते है, जहा पर कि व्यावहारिक शिक्षा कोसो दूर है।

कौन जानता था कि प्रसिद्ध अर्थशास्त्र वेत्ता डाक्टर ग्रेशम का सिद्धान्त करन्सी पर इतना लागू होगा। क्या ऐसे व्यक्ति धन्यवाद के पात्र नहीं हैं? क्या उनके सिद्धान्त श्लाघनीय नहीं हैं? ये सिद्धान्त क्या बिना मस्तिष्क लड़ाए ही आगये थे?

इतना हम इसलिये कह रहे हैं कि बहुधा लोग इस श्रेणी के पुरुषों को हेय दृष्टि से देखा करते हैं। उनका कथन है कि- "एक रत्ती व्यावहारिक ज्ञान एक सेर पुस्तकीय व काल्पनिक ज्ञान से भी जियादा है।" हम यह अवश्य मानते हैं कि व्यावहारिक ज्ञान का महत्व बहुत बड़ा है तथापि इस अतिशयोक्ति पूर्ण नीति को हम स्वीकार नहीं कर सकते। इसका कारण भी हम

ऊपर लिख आये हैं। अब इस विचार के मनुष्य बहुत थोड़े रह गये हैं, और जो हैं, उनमें भी परिवर्तन होता जाता है। तात्पर्य यही कि यह एक शास्त्र है, और इसका ज्ञान बिना नूतन वैज्ञानिक सिद्धान्तों के हो नहीं सकता।

बैंकिंग या महाजनी धन सम्बन्धी व्यापार है, जिस में व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त करना आवश्यक है। इसके बिना कार्य नहीं चल सकता। व्यावहारिक ज्ञान बैंकिंग के लिये अमूल्य रत्न है परन्तु बिना सिद्धान्त जाने वह अधूरा है। जिसने इन दोनों को सीखा है, वही सच्चा बैंकर अर्थात् कार्य कुशल महाजन है। बिना व्यावहारिक ज्ञान के पुस्तकीय काल्पनिक सिद्धान्त भी किसी काम के नहीं। अस्तु, इतना निवेदन कर हम अपने मुख्य विषय की ओर झुकते हैं। सब से पहले यह विचारणीय है कि करन्सी क्या वस्तु है?

इस विषय के बड़े २ विद्वानों ने इसकी परिभाषा करते समय कागजी रुपया अर्थात् पेपर मनी (Paper Money) को इससे अलग रखा है। पर वे बैंक के प्रामिसरी नोटों को करन्सी मे शामिल कर लेते हैं। इग्लेंड बैंक के नोट तथा दूसरे प्रकार के कागजी रुपये को एक ही सा समझ लेने मे बहुतो ने भूल की है। और इसी से करन्सी शब्द बहुधा प्रचलन-माध्यम (Circulating medium) के उस भाग को जो कि नियमानुकूल टेंडर है, व्यक्त करने मे उपयोग किया जाता है। जिन विद्वानों ने बैंक के नोटों को नियमानुकूल टेंडर कह कर सम्मिलित किया

है उनने भूल की है। ये लोग बिल आफ एक्सचेन्ज अर्थात् दर्शनी हुन्डी को करन्सी से अलग कर देते हैं। यह करन्सी की परिभाषा का अर्थ-प्रमाद है। प्रचलन-द्रव्य अर्थात् हुन्डेयावन नियमानुकूल टेंडर है।

इन धन सम्बन्धी प्रश्नों पर बडे २ विद्वानों ने विचार किया है, पर उनका अच्छी तरह हल होना अभी भविष्य के गर्भ में है। ये प्रश्न धन का मूल्य से सम्बन्ध और सिक्के का एक निश्चित परिमाण होना आदि हैं।

यह हम जानते हैं कि सोने चादी के द्रव्य मे और इस कागजी द्रव्य मे कोई अन्तर नहीं है। यही नहीं, धातुओं के सिक्कों के साथ २ इनका भी चलन है। इसलिये करन्सी शब्द उन सभी प्रचलन-द्रव्यों को प्रकट करता है, जिन से ऋण चुकाया जा सकता है और कीमत का माप हो सकता है। सिक्के की यह बहुत बडी परिभाषा है और इस प्रकार इसके दो विभाग हो गये हैं—

१ धातुओं के सिक्के जैसे रुपया, अठन्नी, पौंड आदि।

२ कागजी सिक्के जैसे हुडी, नोट, चेक आदि।

रुपये पैसे का एक निश्चित नियम सन्तोष जनक रूप मे होने के लिये अनेकानेक अर्थशास्त्रियों ने बहुत कुछ विचार किया है। अनुभव से यह बात सिद्ध होगई है कि करन्सी के सिक्कों में घटती बढती करना जातीय ह्रास का चिन्ह है। यह एक बडी भूल है। इन्हीं भूलो के कारण करन्सी का परिमाण अभी तक अपने असली रूप को प्राप्त नहीं हो सका है।

इग्लैंड में ब्लैक स्टोन के समय में जाली सिक्का बनाना राजद्रोह समझा जाता था और अंग्रेजी कानून ऐसे अपराधों पर बहुत कडी सजा देता था, यहा तक कि, सन् १८३२ तक ऐसे अपराधो की सजा मृत्यु थी। अस्तु,

सिक्कों के मुख्य तीन कार्य है —

१—विनिमय का साधन।

२—मूल्य का परिमाण।

३—मूल्य का भिन्न २ भुगतानों के लिये एक परिमाण।

विनिमय अर्थात् अदल बदल करने का साधन हुए बिना जाति नीचे गिर जायगी और इस अवस्था में वह एक वस्तु से दूसरी वस्तु बदलने की प्रथा का उपयोग करने लगेगी। ससार के सभ्य देशों मे यह प्रथा किसी समय प्रचलित थी। उस समय भुगतान करने की रीति भी बड़ी भद्दी थी। इग्लैंड जैसे देश मे भी मध्य काल में धन की बडी कमी थी या दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि उस समय इग्लैंड में सिक्का न था। यदि था भी तो वह यथेष्ट न था।

उस समय के इग्लेंड निवासी यह नहीं जानते थे कि उन का देश समय पा कर ऐसा समृद्धि शाली होगा। आज इग्लैंड सम्पति का लीला स्थल बन रहा है। पर उस समय यहा बडे २ नगरों मे द्रव्य बहुत कम मिलता था तब ग्रामों के विषय में कहना ही क्या है? गाव के लोग नौकरी चाकरी कर माल खरीदते थे

अर्थात् द्रव्य का परिमाण दिन पर रख दिया गया था। यदि सौ रुपये का माल खरीदना होता तो २०।२५ या इसी प्रकार कुछ दिन उसे नौकरी करनी पड़ती। जब नौकरी वेतन से अधिक होती तो वह कृतज्ञता अथवा दया में शुमार करली जाती। बेचारे नौकर वैसे ही पेट बाध कर चले आते थे। इस प्रकार लोग बहुत दुखी होगये थे। कारण यही है कि उस समय विनिमय का कोई साधन न था। इग्लैंड की इस हालत ने और सन् १८३१ के ऐक्ट ने भुगतान के नियम को और भी असुविधाजनक बनाकर व्यापार को चौपट कर दिया था। व्यापार की उन्नति मे भुगतान का महत्वपूर्ण भाग है। अतएव विनिमय का कोई नि॰॰त साधन न होने से उन्हें जो दुख झेलने पडते थे वे अवर्ण्य हैं।

सिक्कों का दूसरा काम मूल्य का परिमाण निश्चित करना है। मूल्य तथा गुण दो भिन्न विचारों पर स्थित हैं। मूल्य स्वत कुछ नहीं है वह केवल एक वस्तु से दूसरी वस्तु के सम्बन्ध का एक परिमाण है। वस्तु का गुण उसकी शक्ति है। मूल्य और कुछ नहीं केवल विनिमय तथा हुंडियावन का एक साधन मात्र है। साधारण शब्दों मे कह सकते हैं कि कीमत वही है जिस से विनमय या अदल बदल हो सके और विनमय के साधन से पूरा २ परिमाण नियत किया जा सकता है और वह सख्या में प्रकट किया जा सकता है। उदाहरण के लिये कहा जा सकता है कि सोने और चादी की एक २ ईंट का मूल्य क्रम से

३५ और एक के अनुपात से है। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते हैं कि एक औंस सोने की कीमत ३५ औंस चांदी की कीमत के बराबर है अर्थात् एक औंस सोने से ३५ औंस चांदी ख़रीदी जा सकती है। इस प्रकार एक वस्तु की कीमत दूसरी से बताई जा सकती है। पर यह तभी हो सकता है जब एक ऐसी वस्तु हो जो सबको नाप सके। एक किसान वस्तुओं का मूल्य मक्का से, जो उसके खेत में पैदा हुई है; दूसरा नमक से; तीसरा कपड़े से, चौथा रोटी से निर्धारित कर सकता है और विनिमय का कार्य इन्हीं में से किसी एक से लिया जा सकता है, पर इससे बहुधा गडबड पड़ा हो जाती है। कभी ठीक २ परिमाण नहीं किया जा सकता। मोल का समान माप करने वाला सिक्का है और यह मोल जब सिक्के में कहा जाता है तो कीमत कहलाती है सोने का मूल्य चांदी से ५ और १ रुपये के अनुपात से है। लेकिन चांदी की कीमत २ शिलिंग ३ पेंस प्रति औंस है। यह एक ग़लती है जब कि लोग कहते हैं कि गेहूं का मोल ३० शिलिंग प्रति क्वार्टर है, क्योंकि ३० शिलिंग एक क्वार्टर गेहूं के सिक्के के रूप में मोल को प्रकट करता है, इसलिये कीमत है।

द्रव्य का ज्यों २ विकास होता गया त्यों २ तीसरा प्रयोग कार्य में आने लगा और उसी प्रकार उसकी महत्ता भी बढ़ती गई। जब स्थायी गवर्नमेन्ट हो गई और व्यापार तथा उद्योग की उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी तब मनुष्य नियमानुसार कार्य करने लगे। वे जब इस प्रकार कहने लगे कि यह रुपया आगे की मिती

मे जमा होगा और यह लो, उस वायदे की चिट्ठी, तभी मोल का परिमाण निश्चित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। जब इस प्रकार रुपये पैसे के वायदे होने लगे तो वायदा करने वाले नियत तिथि के भीतर शर्तों के पूरी करने का ध्यान रखने लगे। यदि एक मनुष्य-ने एक हजार रुपया बीस साल के वायदे पर लिया है तो उस के-लिये कितनी चिन्ता जनक बात होगी जब रुपये का मोल चीजो के लिये, बीस साल के अन्त मे उधार के असली धन से तिगुना हो जाय। इसीलिये सिक्का कीमत का परिमाण निश्चित करता है।जिससे जहा तक हो मूल्य स्थिर रहे। अर्थात उसके मूल्य मे दूसरी वस्तुओ के प्रति प्राय इतना ही परिवर्तन हो जितना होने योग्य हो।

सिक्को के इन तीनो कामो को ध्यान मे रखते हुये हम उन गुणो को जानने का प्रयत्न करेंगे जो सिक्कों मे होने आवश्यक है।

श्रीयुत जीवेन्स साहब सिक्कों मे निम्न लिखित गुण होना आवश्यक समझते है :—

(१) वस्तु का मूल्यवान होना।

(२) एक जगह से दूसरी जगह भेजा जा सके।

(३) अनश्वर।

(४) समजातिक अर्थात् सर्वत्र समान।

(५) अलग २ विभाग किये जा सके।

(६) स्थिर मूल्य।

(७) प्रत्यक्षता अर्थात् देखते ही जाना जा सके।

सिक्के मे विनिमय साधन के लिये चौथा पाँचवा और सातवा गुण होना बहुत ही आवश्यक है।

अब यह एक प्रश्न है कि सिक्का किस वस्तु का बनाया जाय? जो वस्तु मूल्य में भिन्नता और माप मे अन्तर रखती है उसका सिक्का नहीं बनाया जा सकता। वह वस्तु सिक्के के लिये अयोग्य है। वस्तु के विभाग में भी-गुण होना आवश्यक है। उदाहरण के लिये कीमती पत्थर बहु मूल्य समझा जाता है पर टुकडे होजाने पर उनका मूल्य घट जाता है। एक हीरे के चार टुकडे कर डालो, उसका वही मूल्य न होगा जो असली हीरे का था।

इसके अतिरिक्त विनिमय साध्य होने के लिये सिक्के मे सातवा गुण होना आवश्यक है। उसके निरीक्षण के लिये जानकारों की आवश्यकता न पड़े। सिक्के के मोल का पूरा २ माप होने के लिये उस में पहिला गुण चाहिये। उस वस्तु का सिक्का बनाया जाय जो सिक्के के मूल्य के अतिरिक्त अपना भी कुछ मूल्य रखती हो। पर, विचार करने पर, इस नियम मे परिवर्तन भी मालूम होता है। उदाहरण के लिये पश्चिम अफरीका की कौड़ियो को लीजिये। वे गहनों के रुपमे अवश्य कुछ मूल्य रखती हैं परन्तु कौडी रूप में वे इतनी उपयोगी नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि सिक्का मूल्य विरहित धातु का बनाया जाय और

फिर भी सिक्के के रूप में मूल्य रखे। तातार लोग सोने चादी की अपेक्षा चमड़ा, कागज आदि काम मे लाते थे। यह कोई नई बात नहीं है। भारत मे भी ऐसे सिक्कों का प्रचलन हुआ था।

इधर लन्दन के बैंक आफ इग्लेड के बहुत से कागज के नोट प्रचलन में हैं, जिनका मूल्य कागज के रूप में कुछ भी नहीं है। परन्तु उनका मूल्य निश्चित किये हुए सिक्कों के साथ विनिमय का है। नोट के लिये सोने की माग चाहे स्थिर हो जाय, परन्तु नोट के मूल्य में कोई परिवर्तन न होगा।

सिक्के का मूल्य स्थिर रखना भी आवश्यक है; पर सिक्कों में यह गुण होना दुस्तर है।

सभी देशो मे, सब समय में किसी दर्जे तक सिक्कों के लिये सोने चांदी की मांग होती रही है, क्योकि ताबा, कासा और निकल की अपेक्षा उनमें सिक्को मे होने योग्य अधिकाश गुण हैं।

हमारे देश मे तो एकन्नी से लेकर अठन्नी तक निकल की बन चुकी है। रुपया अभी नहीं बना है। हम आगे किसी प्रकरण मे बतायेंगे कि इग्लैंड सरकार ने जब चादी का सिक्का जारी करने की इच्छा की और सोने के सिक्के का मूल्य घटाना चाहा तो वहा की जनता ने किस प्रकार विरोध किया। सोने और चादी दोनों के मूल्य मे अन्तर है। ये दोनों अपने २ गुण में भिन्न हैं, वस्तुओं की कीमत के लिये वे अपने से भिन्न हैं और विदेश भेजने के लिये बोझा हैं।



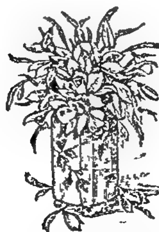
दूसरा प्रकरण

द्रव्य का मूल्य ।



सी वस्तु का मूल्य द्रव्य के रूप मे उसकी कीमत या दाम है। कीमत रुपये पैसे के रूप में वस्तु का मूल्य प्रकट करती है। हम प्राय सभी वस्तुओं को नाप या तौल सकते हैं और उनके मूल्य के अनुसार उनकी कीमत या दाम लगा सकते हैं। परन्तु द्रव्य के लिये हमें कठिनाई उपस्थित होती है क्योंकि वह तो स्वय ही मूल्य का उपमान और नाप है, और उसका कोई ऐसा साधन नहीं है जिनके द्वारा उसकी भी कीमत लगाई जा सके। द्रव्य का मूल्य अन्य सब वस्तुओं की असाधारण समानता से स्थिर किया जाता है। हमारे पाठक इस बात से कि एक का मोल किसी दूसरे से सम्बन्ध प्रकट करता है, विशेष उलझन मे न पड़ जाने का ध्यान रखेंगे। समस्त वस्तुओं का मूल्य उनके द्रव्य के साथ सम्बन्ध से स्थिर किया जाता है। जितनी ही ज्यादा उनकी कीमत होगी उतना ही अधिक उनका मोल होगा। परन्तु द्रव्य का द्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसलिये द्रव्य और सावरिन आदि का मूल्य दूसरी वस्तुओं के सम्बन्ध से स्थिर किया जाता है। जितनी ही जियादा वस्तुओं की कीमत होगी उतनी ही अधिक कीमत

इस प्रकार होती है, जिसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता। यदि कोई सरकार अपने यहा कागजी सिक्के का प्रचलन बन्द करदे और यदि उसके राज्य के बाहर उसका उपयोग अधिकता मे हो तो उस सरकार की क्या दशा होगी ? ज्यों २ धातुओ के सिक्के ढालकर प्रचलन मे लाये जायेगे त्यो २ वे गायब होते जायेगे यहा तक कि, खजाना खाली हो जायगा और धातु भी अवशिष्ट न रहेगी। कागजी द्रव्य से बडी सुलभता रहती है। कागजी द्रव्य का प्रचलन रबर की तरह स्थिति स्थापक गुण वाला है। जिस प्रकार रबर को हम इच्छानुसार छोटा बडा कर सकते हैं उसी प्रकार कागजी सिक्के की भी यही दशा है। कागजी द्रव्य की व्यापार में बडी आवश्यकता पडती है। इसके बिना कार्य चल नहीं सकता। इतनी धातु नहीं है जिससे ससार भर की माग पूरी की जा सके।



तृतीय प्रकरण

ग्रेषम का सिद्धान्त।



क्‍ड़े २ सभ्य देशों के सिक्कों का इतिहास प्रगट करता है कि वे सिक्कों को ठीक रूप में रखने में असफल हुए है। इन असफलताओं का कारण भ्रम पूर्ण सिद्धान्तों का नियमन और कठोर नियमो का परिपालन था। हमारे ही देश में समय समय पर नये नये सिक्के निकाले गये जो शीघ्र ही प्रचलन में से गायब हो गये। इस का कारण यह था कि प्रचलन के सिक्के पुराने थे, बुरी शक्ल के थे साथ ही असम थे उन की तौल एक नहीं थी जिस से बड़ी गड़बड़ पड़ती थी। परिणाम यह होता था कि समाज के लोगो को बहुत हानि उठानी पड़ती थी। और होशियार व चालाक आदमी उस से हाथों हाथ फायदा उठाते थे।

इन सिद्धान्तो में से जो सब से उत्तम है साथ ही जिस की सब से अधिक अपेक्षा की जाती है वह ग्रेषम का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त वास्तव मे एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है न कि राजनैतिक। वैज्ञानिक नियम सार्वभौम तात्पर्य्य को प्रगट करता है और अनुभव से सिद्ध होता है कि उस की कुछ शर्तें व्यवहार

मे लाई जा सक्ती हैं और जो प्रयोग द्वारा सिद्ध भी हो चुकी हैं। राजनैतिक नियम यह प्रगट करता है कि अमुक घटनायें अवश्य होनी चाहिये, एक वैज्ञानिक सिद्धान्त यह प्रगट करता है कि इन दशाओं मे अमुक घटना अवश्य होती है। ग्रेषम का सिद्धान्त महारानी एलीजाबेथ के एक नाइट के नाम से प्रसिद्ध है, यह शाही एक्सचेन्ज का सस्थापक था और ऐसा ख्याल किया जाताहै कि इसे क़ानून के रूप में लाने के लिये शाही आज्ञा प्राप्त हुई थी। यद्यपि वह एलिजाबेथ के राज्यकाल में ही प्रकाशित होगया था तथापि उसके बाद बहुत दिनो तक सर्व मान्य न हुआ। उसका प्रारम्भिक और सबसे सरल रूप इस प्रकार प्रगट किया जासक्ताहै —

"यदि एक ही धातु के सिक्के जो तौल और रूपमें भिन्न प्रकार के हों एक साथ एक ही मूल्य मे प्रचलित किये जाय तो खराब सिक्के अच्छे सिक्को को प्रचलन से हटा देंगे किन्तु अच्छे खराब सिक्कों को प्रचलन में से कभी नहीं हटा सकेंगे।"

कानून बनाने वाले यह बात नही समझ सके कि पूरी तौल के सिक्को की अपेक्षा हलकी तौलके सिक्के क्यो पसन्द किये जायेंगे, और जब पूरी तौल के नये सिक्के जारी किये गये तो प्रचलन गत खराब सिक्को को इन नये सिक्कों द्वारा हटा देने की जो आशा की गई थी उस पर सदा की तरह उन्हे निराश होना पड़ा। जरा विचार पूर्वक देखने से यह बात प्रगट होगी कि इस सिद्धान्त का कार्य मानवी प्रकृति के प्रारम्भिक कार्यों की तरह है। सिक्के का सब से

आवश्यक स्वरूप यह है कि उसका प्रचलन हो सके, एक के पास से दूसरे के पास जा सके। जब कोई मनुष्य कोई वस्तु अपने पास से जुदा करना चाहता है तो, जब उसे विनिमय में उस से अधिक मूल्य की वस्तु प्राप्त हो जाती है तब कहीं वह उससे कम मूल्य की वस्तु देता है।

हमे यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक आधुनिक बैंकिंग की प्रणालियों का विकास नहीं हुआ था तब तक लोग लोहे की सदूकों मे सिक्के इकट्ठे करके रखते थे और इसके लिये वे सबसे नये और भारी वजन के सिक्के छाट कर रखते थे। अब जब कि विज्ञान का प्रचार हो गया है बहुत से मनुष्य जब कि उन के पास कोई सिक्का आता है तो, यद्यपि वे उनसे कोई लाभ नहीं उठाते, तथापि उनकी यही लालसा रहती है कि उन्हें वही सिक्का मिले जो हाल ही मे टक साल से बनकर आया हो। उन दिनों में जब कि सिक्कों की दशा अतिशय विचारणीय थी और जब कि हलके सिक्कों का मिलना उसके पाने वाले को हानिकर था, लोगों मे इस प्रकार के विचार बहुतायत से थे। फिर सराफ आदि जो सिक्कों या ईंटों को बाहर भेजते थे उन्हें सिक्कों की कमी को पूरा करना पडता था क्योंकि अतराष्ट्रीय व्यापार मे सिक्के सदैव तोलकर भेजे आते हैं न कि गिनकर। तीसरी बात चोरी बाजी की थी, जबकि बहुत थोड़ा अवसर परीक्षा के लिये दिया जाता था, थोडा सा मुनाफा अपने लिये लेकर नये सिक्के प्रचलन के सिक्कों के मूल्य के बराबर कर दिये जाते थे। यहां

तब, ग्रेषम के सिद्धान्त का प्रयोग उसके साधरण रूप में होता है। भारी सिक्के देश में से नहीं प्रत्युत् प्रचलन में से गायब हो जाते हैं, कुछ का निर्यात हो जाता है और कुछ गला डाले जाते है, शेष जमाकर रख लिये जाते हैं, कुछ का वजन चालाकी से कम कर दिया जाता है, अर्थात् खराब सिक्का अच्छे सिक्के को हटा देता है।

अब हम उन सिक्कों पर विचार करते है जिनमे दो बहुमूल्य धातुओं का उपयोग होता है और दोनो का प्रचलन परस्पर के निरधारित मूल्य द्वारा होता है यह निरधारण सदैव के लिये होता है या समय २ सरकार नियत करती है, और यहा हम उसी कानून के दूसरे रूप को प्रयोग मे पाते हैं। ऐसी दशा मे हम दो धातुओं को जो सोना और चांदी कहीं जा सक्ती हैं, उनके मूल्य–परिमाण मे बहुधा भिन्न २ पायेंगे।

प्रथमत ईंट के रूप मे दोनो धातुओं मे बाजार भाव के मूल्य का परिमाण है जो दिन प्रतिदिन बाजार की स्थिति के अनुसार किसी हद तक बदलता रहता है, और दूसरा सरकारी परिमाण है जिसके अनुसार दोनों धातुयें प्रचलन में मानी जाती हैं। जब तक इन दोनों का परिमाण, सरकारी और बाजार का परिमाण, समान रहते हैं, तब तक ग्रेषम का कानून अप्रयुक्त है, किन्तु अनुभव प्रगट करता है कि इन दोनों प्रकार के परिमाणों को दीर्घ काल तक समान रखना यदि असम्भव नहीं तो दुस्साध्य अवश्य है।

ऐसा देखा जाता है कि जिन सिक्कों का मूल्य परिमाण से अधिक होता है वे परिमाण से कम मूल्य वाले सिक्के को प्रचलन मे से हटा देते हैं। उदाहरण के लिये जापान के सिक्कों को लीजिये जब कि उस देश में पहले ही पहल युरोपीयनों का प्रभाव पडा था। उस समय सोने और चादी के सिक्कों का मूल्य परिमाण पाच और एक के अनुपात से था, जो साधारणत उस देश का बाजार भाव था। युरोपीयन व्यापारी को यह बात जानने में देर न लगी कि वह पाच औंस चादी से एक औंस सोना मोल ले सक्ता था। और इतना ही सोना युरुप में पन्द्रह औंस चादी के बराबर था। फलत जापान के सोने के सिक्के शीघ्रता पूर्वक प्रचलन से उठ गये।

अग्रेजी इतिहास से दूसरा उदाहरण लीजिये जब एडवर्ड प्रथम के राज्य काल में इगलैंड में पहले पहल अधिक परिमाण में सोने का सिक्का ढाला गया तब निश्चित मूल्य से कम होते ही वे प्रचलन से उठ गये। सोने के फ्लोरिन का प्रचलन मूल्य छ चादी के शिलिंग के बराबर रखा गया। पर दोनों धातुओं के बाजार भाव के अनुसार एक फ्लोरिन का मूल्य सात शिलिंग था। सोने के फ्लोरिन को गलाकर सुनार को बेचने से सात शिलिंग प्राप्त हो सकते थे पर निश्चित मूल्य के अनुसार छ शिलिंग का ही ऋण चुकाया जा सक्ता था। फल यह हुआ कि लोगों ने चादी के रूप में अपना ऋण चुकाया और सोने को इकट्ठा किया, गलाया अथवा बाहर भेज दिया, क्योंकि यह सरल उपाय था।

इस प्रकार हम ग्रेशम के कानून का दूसरा प्रयोग इन शब्दों में प्रगट कर सकते हैं —

" यदि दो बहु मूल्य धातुओं के सिक्के प्रचलित किये जाय और परस्पर परिवर्तन का परिमाण निश्चित हो तो जिस धातु का मूल्य बढ जायगा वह कम मूल्य वाली धातु को प्रचलन से हटा देगी। "

इस उपयोगी सिद्धान्त का एक तीसरा रूप भी है जिसका प्रयोग धातु और कागजी सिक्को के सम्बन्ध मे होता है।

आधुनिक राष्ट्रों के इतिहास मे सिक्का सम्बन्धी गडबड का मुख्य कारण अति अधिक कागजी सिक्को का प्रचार ही पाया जाता है। जब तक कागजी सिक्का आवश्यकता पडने पर धातु के सिक्कों के रूप में परिवर्तित किया जा सक्ता है तब तक उस का अधिक से अधिक प्रचलन ठीक किया जा सक्ता है। किन्तु जब ऐसा नहीं होता। तब उन्हे रोकने के लिये कठोर बन्धन की आवश्यकता होनी चाहिये। जब तक सीमा भङ्ग नहीं होती तब तक अपरिवर्तनशील सिक्का अपना मूल्य स्थिर रख सक्ता है, यदि सरकार की साख एक दम खराब न हो, किन्तु ज्यो ही प्रचलन अत्यधिक हो जाता है, त्यों ही सोना प्रचलन से हटने लगता है और कागजी सिक्के का मूल्य कम हो जाता है।

सिक्कों के अधिक परिमाण में प्रचलित होने का फल यह होता है कि सिक्कों का मूल्य तो घट जाता है पर वस्तु के मूल्य

में वृद्धि होती है। अन्य राष्ट्र सोना चादी की अपेक्षा वस्तुके रूप में मूल्य देना सरल समझते है, और बढ़ते हुए सिक्के क्रमश बाहर भेज दिये जाते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सिक्के धातु के ही होते हैं अथवा ईंटों के रूप मे होते हैं, क्योंकि दूसरे देश कागज क्यों लेने लगे। सिक्कों की बढती हुई कमी से वे एकत्र किये जाते हैं और प्रचलन गत बहुमूल्य धातुओं का स्टाक कम हो जाता है। फिर भी यदि कागजी सिक्का का बनाना प्रचलित रहे तो इस का परिणाम यह होगा कि सोने चादी के सिक्कों और कागजी सिक्कों के मूल्य में परिवर्तन हो जायगा। सोना और चादी भाव में बढ जायगा और नोट घट जायगे। इस दशा में ऋण चुकाना सरल होगा और सोने और चादी का अवशेष सर्वथा मिट जायगा। हम ग्रेषम के कानून के तीसरे रूप को इन शब्दों मे प्रगट कर सक्ते हैं —

"यदि अपरिवर्तनशील कागजी सिक्का बहुतायत से प्रचलित किया जाय अर्थात् साधारण परिमाण से अधिक हो हो जाय तो वह बहुमूल्य धातुओं को प्रचलन से हटा देगा।"

ग्रेषम के सिद्धान्त के यही तीन रूप हैं। यह बतला देना आवश्यक है कि प्रारम्भ में इस का पहले पहल एक ही रूप था। सुविधा के लिये सिद्धान्त के आधार पर पीछे से यह तीन रूप बना लिये गये।



चौथा प्रकरण

अंग्रेजी सिक्का ।



ग्रेजी सिक्का मिश्रितनियमबद्ध प्रणाली द्वारा नियमित है। किसी विशेष प्रकार का सिक्का उस समय नियमानुकूल कहा जा सकता है जबकि किसी कर्ज के अदा करने में वह स्वीकृत किया जा सके। सिक्का इस प्रकार सम्पूर्ण अथवा अपरिमितनियमबद्धटेंडर कहा जायगा यदि वह किसी अनिश्चित परिमाण मे उपर्युक्त रीति द्वारा दिया जा सकता है। यदि कर्जदार को उसे स्वीकार करने की शक्ति मे कठिनाइया उपस्थित हों तो वह सिक्का सीमितनियम बद्धटेंडर कहलायगा।

एक ही लीगलटेंडर के सिक्के होना द्रव्य की सबसे सरल प्रणाली है। पर इस सरलता से बढकर कई असुविधायें हैं। मान लीजिये यदि वह एक धातु सोने की तरह बहुमूल्य है तो, प्रतिदिन के व्यवहार के लिये उसके छोटे २ सिक्के बनाना बड़ा कठिन होगा। यदि वह एक धातु सस्ती है तो उसे अधिक संख्या में विदेश भेजने का व्यय तथा उसकी असुविधायें असहनीय हो जाती हैं। इस दशा में सरकार दो धातुओं के सिक्के बना सकती है और उनके प्रचलन का भाव बाजार में उस धातु के

भाव से भिन्न रख सकती है, जिसके कि वे बने हैं, पर यह कार्य व्यापार की वर्त्तमान आवश्यकता की पूर्ति नहीं करता।

यदि दोनों ही धातुए अपरिमितनियमबद्धटेंडर बनादी जाय और उनके प्रचलन का औसत भाव सरकार द्वारा स्थिर कर दिया जाय, तो ग्रेषम के सिद्धान्तानुसार दूसरे प्रकार मे उन दोनो का प्रचलन कुछ काल के लिये भी अतीव कठिन हो जायगा।

इन कठिनता को दूर करने के लिये अंग्रेजी सरकार ने सन् १८१६ मे मिश्रित नियमबद्ध-प्रणाली को ग्रहण किया। यह प्रणाली ससार के प्राय समस्त सभ्य राष्ट्रों ने ग्रहण की है।

सयुक्त राष्ट्र मे सोना अपरिमित लीगल टेंडर है अर्थात् कोई व्यक्ति किसी भी अनिश्चित सख्या तक सोने के सिक्के मे अपना ऋण चुका सकता है।

इगलैंड बैंक के नोट भी स्वय बैंक और उसकी शाखाओ के अतिरिक्त वही पूर्ण नियम बद्ध–टेंडर हैं। चालीस शिलिङ्ग तक चादी और एक शिलिंग तक कासे का सिक्का पूर्ण नियम-बद्ध है उसके बाद वह परिमित है। सन् १९१४ में युरोपीय महायुद्ध के छिड़ने पर डॉकखाने के सार्टिफिकेट और १ पौंड १० शिलिङ्ग के खजाने के नोट भी नियमबद्ध सिक्के कर लिये गये। पर सन् १९१५ में डाकखाने के सार्टिफिकेट उन सिक्कों मेंसे अलग कर दिये गये।

ग्रेषम साहब के सिद्धान्तानुसार जो कठिनता उपस्थित होती है, उसे दूर करने के लिये एक और नियम बनाया गया जो अब

तक हमारे सिक्कों में अपना कार्य कर रहा है अर्थात् चादी का
मूल्य जो पहले पाँच शिलिङ्ग प्रति औंस था वही सिक्के के रूप
मे ५ शिलिङ्ग ६ पेंस प्रति औंस है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार
कह सकते हैं कि भविष्यमें ५ शिलिङ्ग ६ पेंस के सिक्के में ५ शिलिङ्ग
चादी हो। इसने चादी के सिक्के को घटा कर 'टोकन' की श्रेणी
मे पहुँचा दिया। 'टोकन' उन सिक्कों को कहते हैं जिनका प्रच-
लन मूल्य अपनी असली धातु के मूल्य से अधिक हो।

जरा विचार करने पर ज्ञात हो जायगा कि इस प्रणाली ने
सोने द्वारा चादी का सिक्का प्रचलन से हटाने मे बाधा पहुँचायी
कोई भी मनुष्य चादी का सिक्का बाहर न भेज सकता और न
गला ही सकता, क्योंकि ऐसा करने से उसे ६ पेंस प्रति औंस
घाटा होगा, जबकि चादी का बाजार भाव वही रहे जो पूर्व में
था। इस प्रकार चादी का भाव बढ गया। इस प्रथा से सोना
प्रचलन से कम हो चला, पर ऐसा न होने देने के लिये सरकार
ने चादी के सिक्कों का ढालना अपने हाथ में रखा। सरकार
उतने ही सिक्के ढालती जिससे प्रतिदिन के छोटे २ कामो की
पूर्ति हो सकती थी और इस नियमित परिमाण से चादी सोने को
प्रचलन मे न हटा सकी।

छोटे २ कामों की पूर्ति होती रहने के लिये निश्चित परि-
माण मे चादी के सिक्के बनाये गये। अल्प सख्या मे होने के
कारण कोई व्यक्ति किसी बडे कर्ज मे उसका उपयोगन कर सकता
था। साहूकारों पर भी उसी प्रकार एक नियत्रण रखा गया कि

वे ४० शिलिंग से अधिक न लें। इससे ज्यादा सिक्के लेकर उन्हें 'टोकन' रूप में न रखने देने के लिये यह नियम कर दिया कि उनका प्रचलन बाहर पूरी कीमत में न हो। और कोई ४० शिलिंग से ज्यादा न दे। इसी प्रकार तांबे के सिक्कों पर भी १ शिलिंग तक का परिमाण रख दिया गया।

कोई भी व्यक्ति टकसाल में सोना देकर सिक्के बनवा सकता है, पर उनकी संख्या संतोषजनक होनी चाहिये। टकसाली सोने की कीमत ३ पौंड १७ शिलिंग १०½ पैंस प्रति औंस है। सिक्के बिना कुछ लिये ही ढालदिये जाते हैं। सन् १६६६ के कायनेज एक्ट (सिक्के का कानून) पास होने के पूर्व तक सरकार सिक्कों की ढलाई लेतीथी टकसाल वह केवल महसूल ही नहीं लेती प्रत्युत् बची हुई अन्य धातुओं को भी रख छोड़ती थी। इस प्रथा से सर्वसाधारण पर बुरा परिणाम हुआ। वे लोग सिक्का ढलवाने के लिये सोना न लाते और सरकार को कभी २ पुराने ग्राहकों से सिक्के के लिये नई धातु देने के लिये विवश हो कहना पड़ता था। सन् १६६६ से इंग्लेंड में बिना कुछ दिये ही सोने का सिक्का ढल सकता है। तथापि बहुत से राष्ट्रों ने कर लगा रखा है।

व्यवहार में सर्वसाधारण द्वारा सोने की ईंटें सीधी टकसाल बहुधा कम जाती हैं। इसलिये इंग्लैंड बंक का नियम प्रजा और टकसाल के बीच में नियन्त्रण करता है और १½ पेंस का अत्यन्त साधारण करलेता है। बैंक अपने नियमानुसार बाध्य किया गया है कि सब सोना नियत मूल पर अर्थात् ३ पौंड १७ शिलिंग

९ पेंस प्रति औंस के भाव पर खरीदे। बैंक उसी समय सि
तैयार देती है। यदि यही सोना कारखाने में ले जाया उ
तो कितना समय उसके सिक्का बनाने में लगेगा।

अंग्रेजी सिक्के नियत स्वर्ण के बनाये जाते हैं, जिसमे
अंश असली सोना और एक अँश ताबा होता है। इस प्रक
यह नियत स्वर्ण $\frac{११}{१२}$ शुद्ध अथवा २२ रत्ती शुद्ध होता है।

एक औंस सोने की ३ पौंड १७ शिलिंग १०½ पेस ट
साली कीमत के हिसाब से एक सावरेन का वजन १२
७४४ ग्रेन ट्रॉय। किन्तु प्रारभ मे जब कि पहले ही पह
मशीन बनी थी, वजन में अन्तर पडजाना सहज बात थी औ
यह अन्तर प्रत्येक सावरेन में $\frac{२}{१०}$ ग्रेन का होता था। अब
टकसालों में सिक्के के वजन में फर्क होता है पर अब नई
मशीनों के आविष्कार से अब यह बहुत कम होता है। यह कह
चाहिये कि अब पूरी तौल के सिक्के ढाले जाते हैं। आधे सावरे
मे $\frac{३}{१०}$ ग्रेन का अन्तर होता है। पर दो पौंड और पाच पौंड
टुकडे पूरे २ वजन के तयार हो जाते हैं। पौंड एक निश्चि
सिक्का है। जब तक कि उसका वजन १२२.३ ग्रेन और आ
पौंड का ६१ १२५० ग्रेन से नीचे नहीं। यदि किसी व्यक्ति क
ऐसे सिक्के जिनका वजन ऊपर लिखे हुये वजन से कम हो त
वह नियमानुसार उन्हें उस व्यक्ति को लौटा दे जिससे उसे प्रा
हुये है।

ग्रेशम का सिद्धान्त वास्तव में अपना कार्य कर रहा था और सोने के सिक्के ऐसी बदतर हालत में हो गये थे कि जब सन् १८६९में श्रीयुत् जोवेन्स साहबने हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि ३१½ प्रति सैकड़ा सावरेन और ५० प्रति सैकडा अर्ध सावरेन कम वजन की प्रचलित थीं। सन् १८८४ मे बैंकों ने इस आन्दोलन को उठाया और सरकार भी यथा सभव इस विषय पर कार्य करती रही। अन्त मे सन् १८८९ में उस ने एक 'नवीन सिक्कों का एक्ट' पास किया जिस से राज्य के व्यय से विक्टोरिया के पूर्व के सिक्के प्रचलन से उठा लिये गये। इस प्रकार के सिक्के इगलैंड बैंक पूरे मूल्य मे ले लेता था साथ ही राज्य की ओर से यह घोषणा कर दी गयी कि २८ फरवरी १८९१ के बाद विक्टोरिया के पूर्व के सोने के सिक्के अनियमित हो जायेंगे। सन् १८९१ में सब प्रकार के सिक्को के लिये यह कानून करदिया गया। खोटे सिक्के ३ ग्रेन की हानि से बदले जाते थे।

इन दोनों नियमो ने प्राचीन धारणा को कि, ख़राब सिक्को का नुक्सान अन्तिम मनुष्य को अवश्य भोगना पडेगा, स्पष्ट-प्रगट कर दिया। साधारण धारणा चाहे जैसी हो पर व्यवहार में यह बात असफल सिद्ध हुई राज्य ने इन नियमों को स्वीकृत कर सिक्कों के दुरुस्त करने का भार अपने ऊपर लिया। इसका प्रभाव करन्सी पर बहुत अच्छा पड़ा, और अब उसमे पुराने सिक्कों के प्रति असन्तोष होने का कोई कारण नहीं।

चादी के सिक्कों की दशा का वर्णन वैसा महत्व पूर्ण नहीं है, क्योंकि इसके सिक्के 'टोकन' सिक्के के रूप में होते हैं, जो सयुक्त राज्य के बाहर नहीं जा सकते। फिर भी जितने मूल्य की चादी उनमें होती है उसके अनुसार उनका मूल्य नहीं होता। फिर भी कुछ वर्ष हुये बहुत से चादी के सिक्के खराब दशा मे एकत्र हो गये थे। राज्य का उन्हे नये करने का कर्तव्य था और वह सोने के सिक्कों की अपेक्षा कहीं सरल था। कारण यह था कि चादी का भाव गिरने पर टकसाल को ऐसे सिक्कों को ले लेने मे बड़ा लाभ हुआ। बाजार में चादी का भाव प्राय २ शिलिंग अथवा २ शि ८ पेंस प्रति औंस होता है, और इस मे ५६ शिलिंग के सिक्के तैयार होते है। टकसाल को उसका लाभ देते हुए भी सौ प्रति सैकडा का लाभ होता है। जिससे सरकार को सिक्कों को नये रूप में रखने और पुरानों की दुरुस्ती करने मे किसी प्रकार की अड़चन नहीं होती। बीस वर्ष हुये कि टकसाल ने इग्लैड बैंक द्वारा सब बैंकों मे निर्धारित करवा लिया कि वे चादी के छोटे २ सिक्के पूरे मूल्य में ही ले। इस कार्य का असर सयुक्त राज्य में ऐसा अच्छा हुआ कि वहा के चादी के सिक्कों की दशा बहुत कुछ सुधर गई।



सन् १८९१ के सिक्के के कानून का परिशिष्ट ॥

सिक्कों का नाम	शुद्धता का परिमाण	अन्तर — प्रत्येक टुकड़ का वज़न — स्टाँडर्ड ग्रेन	अन्तर — प्रत्येक टुकड़ का वज़न — मीट्रिक ग्रेन	शुद्धता प्रति सहस्र
सोना —				
५ पौंड	११/१२ शुद्ध सोना १/१२	१ ००	० ०६४८०	२
२ पौंड	मिश्रण अथवा प्रति	० ४०	० ०२५९२	
१ पौंड	सहस्र शुद्ध भाग	० २०	० ०१२९६	
अर्द्ध पौंड	९१६ ६ ।	० १५	० ००९७२	
चान्दी —				
क्राउन	३७/४० शुद्ध चाँदी ३/४०	२ ०००	० १२९६	४
डबल फ्लोरिन	मिश्रण अथवा प्रति	१ ६७८	१ १०८७	
अर्द्ध क्राउन	सहस्र शुद्ध भाग	१ २६४	० ०८८८	
फ्लोरिन	९२५ ।	० ९९७	० ०६४६	
शिलिंग		० ५७८	० ०३७५	
छ पैंस		० ३४६	० ०२२४	
४ पैंस (ग्रेन)		० २६२	० ०१७०	
३ पैंस		० २१२	० ०१३८	
२ पैंस		० १४४	० ००९३	
पैंस		० ०८७	० ००५६	
कांसा —				
पेनी	तांबा, टीन और जस्ते	२ ९१६६६	० १८८९९	०
अर्द्ध पेनी	का धातुओं का	१ ७५००	० ११३३९	
फार्दिंग	मिश्रण ।	० ८७५००	० ०५६६९	

पाचवां प्रकरण

भारतीय सिक्कों का इतिहास।



रतीय सिक्कों का इतिहास जितना प्राचीन है उतना ही मनोरजकभी है। सबसे प्राचीन भारतीय सिक्को का इतिहास अलकझेंड के आक्रमण के बहुत पूर्व से सम्बन्ध रखता है। इम्पीरीयल गजट में लिखा है कि भारत में सिक्कों का प्रयोग ईसा के सातसौ वर्ष पूर्व कहा जा सकता हैं क्यो कि उसी समय से विदेशी सामुद्रिक व्यापार का प्रारम्भ हुआ। इसके लेखक मिस्टर व्ही० ए० स्मिथ लिखते हैं कि विदेशी व्यापारियो से व्यापार सम्पर्क होने से ही भारतवासियो को धातु के सिक्के बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उनकी समझ मे अतराष्ट्रीय व्यापार में ही सिक्कों की आवश्यकता पडती है। पर बात यह नहीं है। किसी भी समाज मे ज्योंही विनियम का प्रादुर्भाव होता है त्योंही सिक्के की आवश्यकता प्रतीत होती है। रामायण और महाभारत काल में ही भारतियो में विनिमय का विकास हो चुका था और अतराष्ट्रीय विनिमय के लिये सिक्कों की आवश्यकता उन्हे बहुत पहले ही प्रतीत हो चुकी थी। मनु काल में सिक्के बनाये जाते थे। नीचे तौल के जिस क्रम का और बहु मूल्य धातुओं के जिस परिमाण

का उल्लेख किया जा रहा है उस से विदित होता है कि तत्कालीन भारतवासी सिक्के बनाने मे बहु मूल्य धातुओं के उपयोग से अनभिज्ञ न थे। पूर्वी देशों मे सिक्के बनाना सरकार का काम नहीं था वरन् साहूकारों और व्यापारियों का काम था। चाणक्य ने तीसरी शताब्दी में टकसाल के अधिकारी के विषय में सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें लिखी हैं। वे इतनी अच्छी है कि हम उन का कुछ उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते। "टकसाल के अधिकारी को उचित है कि वह ऐसे चादी के सिक्के बनाये कि जिस में चार भाग ताम्बा और एक माशा लोहा, टीन अथवा शीशा हो। एक पण, अर्द्ध पण, चतुर्थ पण और अष्ट पण, ये सिक्के होंगे। इन के अतिरिक्त चिन्हदार सिक्के होते थे

मनु लिखित तौल क्रम।

चादी	सोना
२ रत्ती=१ माशा	२ रत्ती=१ माशा
१६ माशा=१ धारन	१६ माशा=१ स्वर्ण
१० धारन=१ सतावन	४ स्वर्ण=१ पाल या
	१० पाल=१ धारन

बाबर का बनाया हुआ तौल क्रम।

८ रत्ती=१ माशा	१२ माशा=१ तोला
४ माशा=१ टंग	१४ तोला=१ सेर
८ माशा=१ मिस्कल	४० सेर=१ मन

आईन अकबरी में दिया हुआ तौल क्रम।

६ रत्ती=१ माशा	१६ माशा=१ [illegible]

जिन में चार भाग चादी, ग्यारह भाग तांबा और एक भाग और कोई धातु रहती थी। यह सिक्के माशक, अर्द्ध माशक, काकनी और अर्द्ध काकनी कहलाते थे। सिक्कों के निरीक्षक को ऐसे नियम बनाने पडते थे जिन से वे विनिमय-माध्यम होते थे और साथ ही कोष में भी जमा किए जा सकते थे।

प्राचीन भारतीय सिक्के धातु के ऐसे टुकडे थे जो आयताकार होते थे, उनके कोने कटे हुए होते थे। बहुधा सिक्कों पर कुछ न लिखा होता था किन्हीं किन्हीं पर एक ओर कुछ खुदा हुआ होता था। उनकी चादी अशुद्ध है जिस मे बीस प्रतिशत मिलावट है। इसकी एक चद्दर बना ली जाती थी जिस में से सिक्के काटे जाते थे।

चाणक्य के लेखानुसार मुख्य सिक्का 'पण' जान पडता है। यह बतलाना कठिन है कि मध्यकालीन 'तनकह' और आधुनिक 'रुपया' से उस का क्या सम्बन्ध है। सर डब्ल्यू. इलियट ने लिखा है कि हिन्दुओ के राज्यकाल मे दक्षिण में सोने का सिक्का ही सदैव प्रचलित था मुख्य सिक्का 'हन' था जिसे द्राविडा भाषा मे होन और पोन कहते है, किन्तु प्रचलन मे साधारणत पनम याफनम ही प्रचलित थे जैसा कि द्राविन कोर में अब भी है। वहा बाजार मे फनम का ही प्रचार है और मालगुजारी भी इसी रूप मे वसूल की जाती है। प्राचीन काल में केवल फनम ही प्रचलित न थे वरन् अर्द्ध फनम और चतुर्थ फनम भी प्रचलित थे। एक गुञ्ज या चतुर्थ फनम एक रत्ती

के बराबर है। तौलने पर उनमें १॥ और २ ग्रेन के बीच मे अन्तर पाया जाता है। इन्हीं के लेखानुसार विदित होता है, कि एक स्वर्ण पनम् ६ ग्रेन के बराबर होता है, अर्द्ध पनम और चतुर्थ पनम क्रमसे तीन और डेढ ग्रेन के बराबर होते हैं। दूसरे शब्दों मे कह सकते है कि एक पनम तौल मे आधुनिक रुपये के १/३ के बराबर होगा और यदि हम सोने और चांदी का मूल्य परिमाण तीस ३० और १ के अनुपात से लें तो १ पनम मूल्य में आधुनिक रुपये के बराबर होगा।

पणों का वास्तविक और वर्तमान मूल्य चाहे जो हो, पर यह तो प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि लम्बी चौड़ी रकमों को जमा करने के लिये कुछ दूसरे और बडे सिक्के अवश्य प्रचलित थे। स्वर्ण सिक्का १४६ ग्रेन या ८० रत्ती के बराबर है और उसका वर्तमान मूल्य अठारह रुपये है स्कन्दगुप्त ने 'स्वर्णों को घटा दिया। इसके विरुद्ध तक्ष शिला के राजा अम्भि ने अलक्षेन्द्र को चांदी के अस्सी सिक्के दिये थे। यह चांदी के मुहरदार चपटे वर्गाकार टुकड़े थे और वजन में भारी थे। रेपसन के मतानुसार यह सिक्का समस्त प्राचीन भारत में प्रचलित था। पंजाब मे जो सिक्के मिले हैं उन पर ब्राह्मी और ग्रीक भाषा में कुछ लिखा है। भारतवर्ष का सब से प्राचीन सिक्का जिस पर कुछ भी अंकित नहीं है वह कसकुट का सिक्का है और वह मौर्य्य राजाओं के समय का है।

प्राचीन समय मे भारत मे सोने के सिक्के प्रचलित थे। रतवर्ष में बहुत पहले से व्यापार की यह दशा रही है कि यात से निर्यात अधिक हुआ है। इसी से जो कुछ बाकी । होता था वह मूल्यवान धातुओ के रूप में चुकाया ता था।

यदि हम भारतीय सिक्कों का इतिहास लिखने का प्रयत्न : तो यह विषय बहुत बढ जायगा। हमें संक्षेप मे यह जान ना चाहिये कि हिन्दू आर्य द्रव्य सम्बन्धी सिद्धान्त रचने में तिशय निपुण थे, वे चलते सिक्कों के समस्त रहस्य को नते थे, और निश्चित सिक्कों की कठिनता को भी पहिचा- ते थे। यहा तक कि स्कन्दगुप्त ने तो सिक्कों के मूल्य को टाने तक का प्रयत्न किया था। मुसलमानों की जीत के समय रत के भिन्न भिन्न राजाओ के भिन्न भिन्न सिक्के थे र जैसा कि मनु, चाणक्य और वराहमिहिर लिखा है, ये सिक्के उसी निश्चित परिमाण के थे। सिक्के ज्य-सरक्षित माने जाते थे और राज्य द्वारा ही उनका रूप ौर वज़न निश्चित होता था। उस समय सोना और चादी नों ही काम मे आती थीं। यद्यपि हम यह निश्चित रूप से हीं बतला सकते कि उस समय दोनों धातुओं का पारस्परिक रिवर्तन का भाव क्या था तथापि बहुमत से यही जाना कि मुसलमानो के पूर्व सोना और चादी का सम्बध : १ था।

मुसलमानी काल में भारतीय सिक्के।

जिस समय मुसलमानों ने पहले पहल भारत में प्रवेश किया उस समय देश में उनने सोने और चादी दोनों धातुओं के सिक्के प्रचलित किये, फिर भी नित्य के व्यवहार के लिये वे स्थानीय सिक्कों पर निर्भर रहते थे। मुसलमानों में प्राय यह समझा जाता था कि सिक्के चलाना और सार्व जनिक प्रार्थनाओं में राजा का नामोल्लेख होना पूर्ण स्वाधनिता और राज्य सत्ता का चिन्ह है, और इसी लिये शहाबुद्दीन गौरी और उसके उत्तराधिकारियों ने अल्तमश के समय तक कुछ सिक्के चलाये, किन्तु ये सिक्के प्राय· विजय–चिन्ह माने जाते थे। सिक्कों का जो कार्य्य है उनसे उनकी पूर्ति न होती थी।

देहली के प्रारम्भिक मुसलमान राजाओं का करन्सी के रूप में सिक्के प्रचलित न करने का एक और भी कारण है। वे मूल के गुलाम थे। यदि वे अपने नाम से सिक्के चलाते तो उनका यह कार्य्य उनके मालिकों के प्रति, जो गजनी के बादशाह थे, राजविद्रोह समझा जाता। शहाबुद्दीन की मृत्यु के पीछे यदि कुतुबुद्दीन अपने नाम के सिक्के चलाता तब कोई अनुचित बात न होती, लेकिन उसी समय देहली के राजा सोना चादी की कमी को महसूस कर रहे थे कारण यह था कि भारत पर आक्रमण के समय महमूद गजनी यहां से बहुत कुछ सोना चादी लूट ले गया था। इसी से यदि वे

चाहते भी तो टकसालों से यथेष्ट परिमाण में सोना चादी के सिक्के नहीं बनवा सकते थे। तत्कालीन सिक्कों का निरीक्षण करने से यह बात प्रकट होती है कि उस समय भिन्न २ सिक्कों का निर्माण क्रम से दूसरे राजाओं के प्रति राज्य सत्ता हस्तातरित हो जाने का रूप ही प्रगट करता है। उन सिक्कों पर पहले नागरी लिपि में कुछ लिखा था फिर वही अरबी लिपि में परिवर्तित हो गया। उन पर यातो लक्ष्मी का चित्र अंकित रहता था और या किसी भारतीय घुड़सवार का चित्र रहता था उनके दूसरी ओर या तो केवल स्थानीय शासक का ही चित्र रहता था अथवा देहली के बादशाह के साथ दोनो ही का चित्र रहता था। हम इन सिक्कों का ठीक वजन नहीं बतला सकते, परन्तु तौलने पर सबसे बड़े सोने के टुकड़े का वजन ९३ ग्रेन और चांदी के टुकड़े का वजन १३३ ग्रेन पाया गया ये सिक्के गोलाकार है।

भारत मे मुसलमानी सिक्कों की प्रचलन की तिथि ६२६ हिजरी के प्रथम मास का तेईसवा दिन है। देहली मे मुसलमानी राज्य स्थापित होने के तीस वर्ष बाद की बात है। उसी वर्ष अल्तमश खलीफा द्वारा स्वाधीन सुल्तान माना गया था। इस अवसर पर जो सिक्का चलाया गया वह तत्कालीन भारतीय शासक का गौरव प्रकट करता है। इस के उपरान्त जो सिक्के निर्मित हुये वे इसी आदर्श को लेकर बने। 'ताजुलमशीर' के लेखक हसननिजामी ने लिखा है कि इसी समय से आगे देहली

वालों तक उनके सिक्के बने, और यद्यपि वे दीनार और दिरहम को भी वैसा ही मानते हैं तथापि ये सिक्के हिन्दुस्तान की टकसालों में नहीं बने थे, बल्कि वे वहीं बने थे जहा से कि शासक आये थे। इस में सदेह नहीं कि ये सिक्के भी प्रचलन मे थे। यहा तक कि आठवीं शताब्दी में हर्ष कालीन बाण भट्ट के ग्रथों मे भी दीनार और निष्क का उल्लेख पाया जाता है। इससे प्रकट होता है हिन्दुस्तान जीतने के चारसौ वर्ष पहले ही अरब वालो का भारतवर्ष मे प्रभाव था। इसके उपरान्त हम देहलीवाल या तनकह सिक्को को, जो तौल में १६८ से १८० ग्रेन तक हैं, पाते हैं।

हम अल्तमश को भारत के चादी के सिक्कों का निर्माता कह सकते हे। उसने उन सिक्कों का जो परिमाण निश्चित किया उनकी तौल और शुद्धता जैसी रखी वह ६० वर्ष तक वैसी ही बनी रही। पीछे से उसने सोने के भी सिक्के चलाये और ये सिक्के तनकह के ढग के ही थे, उनका आकार प्रकार और वजन वैसा ही था। ज्यादातर सिक्के साधारण ढग के ही थे साथ ही ताम्बे के सिक्के भी प्रचलित थे। अल्तमश ने थोड़े थोड़े मूल्य के बहुत से सिक्के खास अपनी टकसाल से बनवाये। फिरश्ताने लिखा है कि तत्कालीन द्रव्य के मूल्य को समझने के लिये यह जान लेना उचित है कि तनकह चाहे वह सोने का हो या चांदी का तौल में एक तोला था, और चादी का एक तनकह ५० जितल के बराबर था। जितल एक छोटा सा

ताम्बे का सिक्का थाँ, जिसका वजन ठीक ठीक ज्ञात नहीं। किन्हीं लोगों के मत मे वह एक तोले का था और कुछ लोगों का यह मत है कि जितल आजकल के पैसे की तरह एक तोला पैसे का १/२ हिस्सा था।

अल्तमश का निश्चित किया हुआ यह मूल्य परिमाण अलाउद्दीन खिलजी के राज्य काल तक वैसा ही बना रहा। इस शासक ने सिक्का घटाने का प्रयत्न किया। उसने तनकह को १८० ग्रेन से घटा कर १४० ग्रेन का कर दिया, इस कमी से मूल्य में परिवर्तन न होने देने के लिये उसने वस्तुओं का मूल्य इस प्रकार निश्चित कर दिया कि सैनिक जितने पुराने सिक्कों में किसी वस्तु को मोल ले सकते थे उतने ही नये सिक्कों मे वे उसे क्रय कर सकते थे। इस १४० तोले तनकह का नामान्तर आदली हो गया। इसका खूब प्रचार हुआ। पर इसका प्रचलन थोड़े ही समय तक रहा।

भारतीय सिक्कों के इतिहास मे दूसरा उल्लेखनीय नाम मुहम्मद तुगलक का है। यह सुयोग्य बादशाह स्वकालीन सिक्कों का अच्छा सुधारक था, पर उसके लिये अभी पाच शताब्दियां अवशिष्ट थीं। यद्यपि उसके द्वारा किये गये परिवर्तनों का यथार्थ वर्णन हमें नहीं मिलता तथापि उसे जानने का हमारे पास बहुत कुछ मसाला है। इजिप्ट (मिश्र) के इब्न बतूताह और शेख मुबारक बिन मुहम्मद अनबातो

इन दो विदेशी यात्रियों ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिख रक्खा है। जिसके द्वारा हम चौदहवीं शताब्दी में किये गये करन्सी के परिवर्तनों का वर्णन जान कर अपने लेख का क्रम स्थिर रख सकते है। यहा हम मुहम्मद तुगलक के समय के कुछ सिक्कों का मान क्रम लिखते हैं

१ कानी=१ जितल=१ पैसा

२ कानी=१ सुल्तानी=½ आना

३ सुल्तानी=१ शशकानी

४ सुल्तानी=१ अष्टकानी=२ आना

६४ कानी=१ तनकह (१७५ ग्रेन शुद्ध चादी)=रुपया

¼ कानी=१ दमड़ी अर्थात् १ तनकह=२५६ दमड़ी

यहा हमें भारतीय भाग क्रम का भी किञ्चित विचार करना चाहिये। ऐसा ज्ञात होता है कि अरब आदि पश्चिमी देशों ने बहुत पहले ही से दशमलव की प्रणाली को ग्रहण कर लिया था और इसी से पाच व दश का भाग उन में साधारणतया प्रचलित था। इधर भारत में बहुत पहले ही से चतुर्थ परिमाण का प्रचार पाया जाता है और इसी से चार, सोलह, चौंसठ आदि से प्राय भाग दिया जाता था। उक्त क्रम से यह सिद्ध होता है कि सिक्कों के निर्माण की भारतीय प्रणाली ने अरब आदि विदेशियों से कुछ भी ग्रहण न किया। हा, विदेशी विजेताओं ने हो स्थानीय

पद्धति को अवश्य ग्रहण कर लिया। अल्तमश के समय तक स्थानीय परिमाण और उसके उपविभागों के अनुसार ही कार्य होता रहा और वह अल्लाउद्दीन खिलजी के पूर्व वैसा ही बना रहा अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक ने इसमे कुछ सुधार किये।

मुहम्मदतुगलक ने खिलजी के आदर्श सिक्के को प्रचलित किया और साथ ही १७५ ग्रेन के तनकह से कुछ ही ज्यादा वजन का दूसरा सोने का सिक्का चलाया। यह दूसरा सिक्का २०० ग्रेन की दीनार था ऐसा ज्ञान होता है कि इस सिक्के ने बहुत कम प्रचार पाया। मुहम्मद ने पुराने तनकह के आकार प्रकार मे भी परिवर्तन किया। सोने और चादी के इन नये सिक्कों ने बडी गड़बडी मचादी। ऐसा जान पडता है कि वह सिक्के के परिमाण को ठीक ठीक न समझ सका। एक निश्चित परिमाण के अभाव मे सोने चादी का पारस्परिक सम्बन्ध क्रय विक्रय के साधारण सिद्धान्त पर छोड दिया था जिससे न केवल सिक्को मे ही गडबड़ी पडती थी प्रत्युत् मूल्य मे भी भ्रम उत्पन्न होता था। हम जिस समय की बातें कर रहे है उस समय तांबे के सिक्के का ही सर्वसाधारण में प्रचार था और चादी भी नाम के लिये सरकारी सिक्के मे सम्मिलित थी। मुहम्मद तुगलक ने दाम को जो तांबे का एक छोटा सिक्का था, टकाई माना। तांबे के उपरान्त चादी का मूल्य निश्चित था; और सोना, जो कम परिमाण में था और साथ ही लोग

जिससे गहने बना लेते थे, प्राय घटा बढ़ा करता था। इसी से हम किसी समय भी सोना चांदी का परस्पर स्थिर सम्बन्ध नहीं ले सकते। यद्यपि इस सम्बन्ध में बहुत से परिमाण बतलाये जाते हैं तथापि अधिकांश में उनका परिमाण १ ८ और १ १० ही पाया जाता है। यह याद रखना चाहिये कि इस बात का प्रमाण पाया जाता है कि दस चांदी के सिक्के के बदले में एक सोने का सिक्का लिया जा सकता था, इससे अनुपात क्रम १० १ नहीं होता, क्योंकि यदि दस चांदी के सिक्कों का वजन १४०० ग्रेन होता और एक सोने के सिक्के का वजन २०० ग्रेन होता तो उसका परिमाण ७·१ होता। हां, मुहम्मद तुगलक के विषय में यह अवश्य कहा जा सकता है, क्योंकि उसने सोने और चांदी की समान तोल का विचार त्याग दिया था।

मुहम्मद तुगलक के सोने का सिक्का चलाने का कारण सहज ही जाना जा सकता है। अलाउद्दीन खिलजी और मलिक काफूर ने देहली के खजाने में बहुत सा सोना भर दिया था। तुगलक के समय में सिक्कों में वृद्धि की आवश्यकता थी और मुहम्मद ने भारी सोने का सिक्का चलाकर इस आवश्यकता को पूर्ण किया। उसने निश्चित सिक्के को न बदला और इसीसे इस नये सिक्के ने बडा भ्रम फैला दिया। इसके अतिरिक्त सोना, चांदीके परस्पर सम्बन्ध केपरिमाण ने जो ७ १ था केवल करन्सी के निर्णय मे ही नहीं प्रत्युत् वस्तुओं के मूल्य मे भी बड़ी गड़बड़ मचा दी।

भारतीय सिक्कों के इतिहास में तीसरा नाम शेरशाह का लिया जा सकता है। उसने टकसालों के निर्माण मे बहुत कुछ सुधार किया और जैसा कि आइन अकबरी में लिखा है उसके बाद के बादशाहों ने भी उस का अनुसरण किया उसने सिक्कों की बढ़ती हुई खराबी को दूर किया, जोकि तत्कालीन सिक्कों में मिश्रित धातु के कारण उत्पन्न होगई थी। उसने सिक्को को फिर से बनवाया और चांदी और तांबे के पारस्परिक सम्बन्ध का मूल्य फिर से स्थिर किया। उसकी मृत्यु के ५० वर्ष बाद ही अकबर ने दोनों धातुओं का सम्बन्ध १:४ माना किन्तु हम यह कह सकते हैं कि चांदी के रूप में सोने का मूल्य स्थिर करने में शेरशाह के सुधार ने ही बहुत कुछ काम किया।

अब हम अकबर की निश्चित की हुई पद्धति का संक्षेप में वर्णन कर अपने विषय के इस भाग को समाप्त करेंगे। उस समय के सिक्कों की ठीक ठीक दशा जानने के लिये सबसे सरल उपाय तत्काल प्रचलित सिक्कों का थोड़ा सा वर्णन कर देना ही होगा। वह इस प्रकार है —

(१) शाहन्शाही मुहर १०१ तोला ६ माशा ७ रत्ती १०० लाल जलाली मुहर (प्रति मुहर १० रुपया)

(२) शाहन्शाही तौल ६१ तोला ८ माशे=१०० गोल मुहर (प्रति मुहर ६ रुपया)

(३) रहस=नं० १ और २ का ½

(४) आतमाह=नं० १ का $\frac{१}{४}$

(५) बिनसात—नं० १ का $\frac{१}{५}$ और इसी प्रकार नं १ के $\frac{१}{८}$, $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{२०}$ और $\frac{१}{२५}$ के बराबर भी थे।

(६) चहारगोशह (३ तोला ५ $\frac{१}{२}$ रत्ती)=३० रुपये

(७) चुगल (२ तोला २ माशा)=३ गोल मुहर प्रति मुहर ९ रुपया

(८) इलाही (१ तोला २ माशा ४$\frac{३}{४}$ रत्ती)=१२ रुपये

(९) आफतावी (१२ माशा १$\frac{३}{४}$ रत्ती)= १० रुपये

(१०) लाल जलाली (१ तोला १$\frac{३}{४}$ रत्ती)=१० रुपये ४०० दाम

(११) अदल गुटका (११ माशा)=९ रुपये यही गोल मुहर कहलाती थी।

ये सब सिक्के सोने के थे। इनके अतिरिक्त चांदी के भी सिक्के थे जैसे —

(१) रुपया (गोल)—११ माशा ४ रत्ती

(२) जलाल (वर्गाकार) इसके उपभाग भी थे यथा $\frac{१}{२}$ जलाल या १ दरब, $\frac{१}{२}$ दरब या १ चारु, $\frac{४}{५}$ चारु या १ पाडु, $\frac{५}{८}$ पाडु या १ अष्ट, $\frac{८}{१०}$ अष्ट या १ दश $\frac{१०}{१६}$ दश या १ कला और $\frac{१६}{२०}$ कला या १ सुकी। रुपये का मूल्य ४० दाम था।

तांबे के भी कुछ सिक्के थे जो एक्सचेन्ज की इकाई माने जाते थे ये १ रुपये के ४० होते थे, अधेला, पावला और दमड़ी या ½ दाम, ¼ दाम और ⅛ दाम भी होते थे।

उपरोक्त परिमाण क्रम से दो बातें विदित होती हैं। (१) शाहन्शाही आदि बड़े सिक्के तमगे की तरह थे वे नित्य के व्यवहार में नहीं आते थे। यहां हमें यह याद रखना चाहिये कि शाही खजाने में, जैसा कि हाकिम ने लिखा है, ऐसे सिक्कों की तादाद बीस हजार तक रहती थी। अकबर के उत्तराधिकारी उन्हें और बनाने गये ये मुहरें आज कल के नोटों का काम करती थीं। जिस प्रकार आज कल दस दस हजार के नोट होते हैं उसी प्रकार ये मुहरें भी अधिक मूल्य की होती थीं। शाही टकसाल में इन सिक्कों में से बादशाह को ५॥ प्रति सैकड़ा मुहरें दी जाती थीं इसी से उन्हें प्रचलन में रखने का लाभ बढ़ता था।

दूसरी बात तांबे के दामों की अभिवृद्धि की है। अन्य सब सिक्कों का मूल्य दाम के रूप में दिया जाता था और मालगुजारी तथा राजकीय व्यय में इन का उपयोग होता था। इस से यह प्रकट होता है कि अकबर के समय में यह करन्सी की इकाई था।

भिन्न भिन्न सिक्कों का मूल्य निश्चित कर देने पर अकबर का ध्यान सोने और चांदी के सम्बन्ध की ओर गया। उसके पूर्व के सुल्तानों के समय में ८ : १ तथा १० : १ था, और तुगलक के जमाने में ७ : १ ही था। अकबर ने उसे १ ४ : ९ कर दिया।

अकबर बादशाह ने जिस पद्धति को चलाया उसके उत्तरा-धिकारियों ने भी उसी को कायम रक्खा । मुगल सम्राट् ने भारत वर्ष के आसपास का सारा देश जीत कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था अतएव सम्पूर्ण भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक एकही प्रकार के सिक्के प्रचालित थे। मुगलोंके अर्थात् साम्राज्य सगठित होने के पूर्व भारत में कदापि एक ही प्रकार का सिक्का प्रचलित न था । इसी कारण हमने प्रांतीय सिक्कों का कुछ हाल नहीं लिखा है। हमने देहली के सिक्कों तक ही अपने विचार परिमित कर लिये हैं। ये इस लिए नहीं कि हम प्रान्तीय सिक्कों के महत्व को नहीं मानते प्रत्युत् इस लिये कि ऐसा करने से विशेष अड़चन पैदा हो जायगी। हा, हम समष्टिरूप में उत्तर भारत से भिन्न दक्षिण भारत के सम्बन्ध में कुछ लिख सकते हैं। हम पहले ही लिख चुके हैं कि सर इलियट के मतानुसार दक्षिण में हिन्दू राजाओं के राज्यकाल में सोने का सिक्का ही प्रचलित था। मुख्य सिक्का 'हन' अथवा 'होन' था और उसके अनेक छोटे २ अश भी थे जो 'पनम' या 'फनम' कहलाते थे। मुगल साम्राज्य के स्थापित हो जाने के पश्चात् दक्षिण में मुख्य सिक्का रुपया हो गया। मरहठों ने भी इसे स्वीकार किया और अब आज भी रुपया मुख्य सिक्का माना जाता है।

मुगल साम्राज्य के नष्ट हो जाने पर भी सिक्कों का बाहरी स्वरूप तद्वत ही बना रहा। भिन्न २ राजाओं ने अपनी २

गलित सिक्का से द्रव्य [illegible] द्वारा निकाला द्रव्य	शुद्ध हो जाने पर टकसालसे लाटने की कुल तादाद	व्यापारी का कुछ लाभके साथ फिर पाजाना	मुद्रा प्रस्तुत करने का खर्च जो सरकार को दिया जाता है	टकसाल का महसूल
	म रु द ज.	म रु द ज	म रु द ज	रु द ज
१०० लाल जलाली सोनकीमुहर	म १०५ ३६ २५,०	१०० १२ ३७ ३।	८ १२ ३॥ ०	७ २६ २०॥
६५० रु (अशुद्ध धातुकी जाच)	व १००६, २७ २०	६५३-२१-१६॥	५० १२ ०	२ ३३ २
६५० रु (पुराने सिक्कों का नमूना	८। १० १५, २०,०	६५४ २१ ०	५० १४ ०	१० १२ १४॥।
१०५४ दाम	द १०७०,०	६६२,१६॥	५८ २०	१ ८ १८

म= मुहर, रु =रुपये, द =दाम, ज=तिजारत

अकबर बादशाह ने जिस पद्धति को चलाया उसके उत्तराधिकारियों ने भी उसी को कायम रक्खा । मुगल सम्राट् ने भारत वर्ष के आसपास का सारा देश जीत कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था अतएव सम्पूर्ण भारत मे एक छोर से दूसरे छोर तक एकही प्रकार के सिक्के प्रचालित थे। मुगलोंके अर्थात् साम्राज्य सगठित होने के पूर्व भारत में कदापि एक ही प्रकार का सिक्का प्रचलित न था । इसी कारण हमने प्रांतीय सिक्कों का कुछ हाल नहीं लिखा है। हमने देहली के सिक्कों तक ही अपने विचार परिमित कर लिये हैं। वे इस लिए नहीं कि हम प्रान्तीय सिक्कों के महत्व को नहीं मानते प्रत्युत् इस लिये कि ऐसा करने से विशेष अड़चन पैदा हो जायगी। हा, हम समष्टिरूप में उत्तर भारत से भिन्न दक्षिण भारत के सम्बन्ध में कुछ लिख सकते हैं। हम पहले ही लिख चुके हैं कि सर इलियट के मतानुसार दक्षिण में हिन्दू राजाओं के राज्यकाल में सोने का सिक्का ही प्रचलित था। मुख्य सिक्का 'हन' अथवा 'होन' था और उसके अनेक छोटे २ अश भी थे जो 'पनम' या 'फनम' कहलाते थे। मुगल साम्राज्य के स्थापित हो जाने के पश्चात् दक्षिण मे मुख्य सिक्का रुपया हो गया। मरहठों ने भी इसे स्वीकार किया और अब आज भी रुपया मुख्य सिक्का माना जाता है।

मुगल सामाज्य के नष्ट हो जाने पर भी सिक्का का बाहरी स्वरूप तद्वत ही बना रहा। भिन्न २ राजाओं ने अपनी २

स्वतन्त्र टकसालें खोलीं और अपने सिक्के बनवाये। इस भिन्नता के कारण हम सिक्कों का एक वजन स्थिर नहीं कर सकते। अतएव औरंगजेब की मृत्यु से लेकर (सन् १७०७) ईष्ट इंडिया कम्पनी का रुपया बनने के समय तक (१८३५) का भारतीय सिक्कों का इतिहास लिखना असंभव है। केवल यह जान लेना पर्याप्त है कि सन् १८३५ के सुधार होने के पूर्व सर्वत्र सोने चांदी के सिक्के प्रचलित थे। ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने सन् १७१७ में बम्बई में, सन् १७४२ में मद्रास में और सन् १७५७ में कलकत्ता में मुगलों से सिक्के बनाने का अधिकार ले लिया। इनके पहले अंग्रेजों ने कुछ अपने सिक्के बनाये थे, किन्तु जब उन्हें अधिकार मिल गया तो वे अपनी टकसालों में मुगल सिक्का ही ढालने लगे।

उस समय ३ प्रकार के रुपये प्रचलित थे। एक तो सिक्ख रुपया जो उत्तर भारत और बंगाल में प्रचलित था। दूसरा सूरत का रुपया जो बम्बई में प्रचलित था और तीसरा अरकाटी रुपया जो मद्रास में प्रचलित था। सिख रुपये का वजन १८० ग्रेन था जिसमें १७६ ग्रेन शुद्ध चांदी थी। किंचित् फेर-फार के साथ वह सन् १८३६ तक चलता रहा। बम्बई का पुराना रुपया सिख रुपये से कुछ हलका था, किन्तु उसमें शुद्ध चांदी अधिक थी। सूरत का रुपया १७८१ ग्रेन का था और उसमें १·२४ प्रति सैकड़ा मिश्रण था। सूरत के नवाब से संधि कर यह निश्चित हुआ था कि बम्बई और सूरत दोनों का रुपया एक

दूसरे के देश में एक ही निश्चित मूल्य पर चले। इसके बाद ही नवाब के रुपये में १०, १२ और १५ तक मिश्रण रहने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि बम्बई का रुपया सूरत मे ढलने के लिये जाने लगा और बम्बई गवर्नमेन्ट ने अनुमान २० वर्ष तक अपने यहा सिक्के ढालना बंद कर दिया। सन् १८८४ में बम्बई गवर्नमेन्ट ने सूरत के रुपये को अपनी टकसाल में ढालने की आज्ञा दी और तब से दोनों जगह के रुपये समान तोल के रहने लगे। उसका वजन १७९ ग्रेन था जिसमें ७ ९७% मिश्रण था। अरकाटी रुपये में १६६ ४७७ ग्रेन शुद्ध चादी थी। चादी की समता मे सोने का मूल्य बहुत अधिक था अतएव सोने के पगोडे के आगे चादी के रुपये का कुछ भी मूल्य न था।

सन् १८०६ में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने पूर्व में एक ही प्रकार का सिक्का चलाने का विचार किया और मद्रास का सिक्का प्रचलन से हटा दिया गया। नये सिक्के का वजन १८० ग्रेन था और उसमें ११/१२ शुद्ध चादी थी। ऐसे ऐसे ३५० रुपये १०० पगोडा के बराबर थे। पर ७ जनवरी सन् १८१८ के पूर्व तक य सिक्के नहीं चलाये गये थे। कम्पनी ने अपने एशियाई उपनिवेशों मे एक ही प्रकार का सिक्का चलाने का विचार सन् १८०६ में किया पर इसके लिये उन्हें ३० वर्ष और रुकना पड़ा। सन् १८३५ के कानून के अनुसार समस्त भारत में एक ही प्रकार का चादी का रुपया और अर्द्ध रुपया चलता सिक्का कर

दिया गया। इसमें १८० ग्रेन का वजन था जिसमे १६५ ग्रेन शुद्ध चादी थी।

सन् १८३५ के पूर्व सोने के सिक्के

चादी के रुपये की तरह ही मुगलों की सोने की मुहर का वजन १०० रत्ती था। इसमें १७५ ग्रेन शुद्ध सोना था। सन् १७८५ के उपरान्त ईष्ट इण्डिया कम्पनी ने केवल एक ही प्रकार के सोने का प्रचलन करना चाहा। पर यह विचार पूर्ण न हो सका क्योंकि सोने की मुहर सार्वजनिक व्यवहार मे चलता सिक्का न मानी जाती थी और न मुहर और सोने का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित था। सोने की मुहर का मूल्य बदलता रहता था, किन्तु रुपये का मूल्य निश्चित था।

सन् १८३५ के एक्ट में यह कहा गया कि "एशियाई उपनिवेशों मे कहीं भी सोने के सिक्के का प्रचलन न किया जायगा। दक्षिण भारत में 'कराह' सोने का सिक्का था जिसका नाम 'हुन' भी था। सन् १८१८ के पहले सोने का प्रचलित सिक्का मद्रास मे 'तारा पगोडा' था। उसमे ४२ ०४८ ग्रेन शुद्ध सोना था उसका मूल्य ७ शि० ५¾ पेंस था। नये ऐक्ट के अनुसार केवल चादी का रुपया ही प्रचलन का सिक्का माना गया और पगोडा बन्द कर दिये गये। सन् १८२० मे सोने के सिक्के बनाना बद कर दिया गया और तदनुसार उनका प्रचलन भी परिमित होगया।

जैब चांदी का रुपया प्रचलन मे होगया तो उस समय से भारत में सोने का सिक्का चलाने का विचार किया जारहा है। सन् १८४१ जनवरी की ३० तारीख को यह प्रकट किया गया कि सार्वजनिक कोष सोने की मुहर १५ रु० में ले सकते है और तब से सोने की मुहर प्रचलन का सिक्का मान ली गयी। पर सोने के सिक्के ढाले नहीं गये और १८४५ में कदाचित् ही सोने का सिक्का प्रचलन में था। गत शताब्दी के मध्य में आस्ट्रेलियन और केलिफोर्निया के सोने की खोज हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि सोने का भाव गिर गया। सन् १८५२ में एक आज्ञा द्वारा खजानों में सोना जमा करने का अधिकार लौटा लिया गया। दस वर्ष बाद जब कपास का अकाल पड़ा तो भारत में मूल्यवान् धातुओं का अत्यधिक आयात हुआ, अतएव बम्बई और मद्रास के चेम्बर आफ कामर्स ने फिर एक बार सोने के सिक्के के प्रचलन का आन्दोलन उठाया। इसका परिणाम यह हुआ कि २३ नवम्बर सन् १७६४ से सार्वजनिक कोषों मे अंग्रेजी सावरिन १० रु में और अर्द्ध सावरिन ५ र में लेने की आज्ञा दी गयी।

इस सिक्के के चलाने का एक दूसरा कारण मेन्सफील्ड कमीशन की नियुक्त का होना भी था। इस कमेटी ने सोने का सिक्का चलाने की सिफारिश की और १ सावरिन १० रु ४ आने के बराबर माना। किन्तु इस विचार के कार्य रूप में परिणित होने के पूर्व सोने और चादी के पारस्परिक मूल्य म घोर क्रान्ति

हुई और जर्मनी और फ्रांस द्वारा चांदी का सिक्का प्रचलन से हटा दिया जाने के कारण चांदी का भाव बहुत गिर गया। भारत में चांदी के अत्यधिक आयात से चांदी के सिक्के का भाव गिर गया। भारत सरकार इस समय बड़ी कठिनाई में पड़ी, क्योंकि वह चांदी के रूप में ही अपनी मालगुजारी वसूल करती थी, और इंग्लैंड में उसे सोने के रूप में बहुत धन देना पड़ता था। चांदी जो २० वर्ष पहले १ पौंड के सामने १० रुपये के बराबर थी। अब केवल प्रति रुपया १ शि० १ पें० के बराबर रह गई। भारत सरकार को इस समय बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ा। क्योंकि रुपये के मूल्य में १ पेनी का अन्तर से भी सारी आमदनी में एक लाख पोंड का अन्तर पड़ता था। अतएव वह चांदी का मूल्य स्थिर करने के लिये विशेष चिन्तित थी। सन् १८७३ से १८९२ तक वह इण्डिया आफिस से बराबर लिखा पढ़ी करती रही। पर इसका कोई फल न हुआ। अमेरिका, ब्रुसेल्स और पेरिस में सोने चांदी का परस्पर मूल्य स्थिर कर देने के लिये जो कान्फ्रेंसें हुई उनका भी कुछ फल न हुआ तब लार्ड चान्सलर और लार्ड हर्शेल की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया (सन् १८९२) इस कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में सन् १८९३ में टकसालें बन्द करदी गयीं जिससे रुपये के मूल्य में कृत्रिम आय-वृद्धि हुई। ६ वर्ष तक टकसालें बन्द रहीं और सरकार को अपने उद्देश्य में सफलता मिली। सन् १८९९ में सिल का भाव गिरते

में रुपये ढालना बन्द कर दिया गया उसी समय समीप भविष्य मे सरकार सोनेका सिक्का,भारतीय सोनेका सिक्का,चलाने का विचार कर रही थी। यह सम्भवत इस विचार से था कि गवर्मेन्ट के १८९३ के नोटिस से टकसालों में सोने का सिक्का या सिल नोट और रुपयों के बदले में प्रति रुपया १ शि० ४ पें० के हिसाब से ली जाने लगेगी। साथही सरकारी रुपया चुकाने मे अंग्रेजी पौंड और अर्द्ध पौंड भी उसी प्रकार लिये जायँगे। किन्तु चांदी का भाव गिर जाने से उस समय यह विचार कार्य रूप मे परिणित न हो सका। सन् १८९२-९३ में एक्सचैंज की औसत दर प्रति रुपया १ शि ३ पें थी। आगे दो वर्षोंमे भाव और भी गिरगया यहा तक कि १८९४-९५ में वह प्रति रुपया १ शि १ पें ही रह गया सन् १८९३के पूर्वतक जो रुपया ढलचुका था उसकी चलते सिक्केमे माग बढने लगी और सरकार उसे पूरी करने लगी। परन्तु जब सरकार ने और अधिक रुपया ढालना बद कर दिया और बराबर ६ साल तक यही दशा रही तो रुपये की कीमत बढ गई, यहा तक कि सन् १८९९ में वह १ शि० ३ ८ पेंस हो गई, अर्थात सन् १८९३ के नोटिस के अनुसार सरकार जो भाव चाहतीथी उससे दो पेंस ही कम रहा। इसी समय फाउलर कमेटीने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और भारत में सोने का सिक्का चलानेकी सिफारिश की। वह इस प्रकार सक्षेप में है —

भारत में सोने का सिक्का चलाया जाय और रुपया चिन्ह सिक्का रहे और उसका मूल्य $\frac{1}{15}$ पौंड रहे। सर्व साधारण के लिये

६ टा प्रकरण

भारत मे सोने चांदी और तांबे आदिके सिक्कों का वर्तमान प्रचलन.

(भारत में धातु के सिक्के)



म १८९३ तक के भारतीय सिक्कों के इतिहासका दिग्दर्शन करा चुके है। इसी समय भारत मे व्यक्तिगत रुपयों का मुफ्त में ढालना बन्द कर दिया गया। भारतीय करन्सी का वर्तमान रूप समझने के लिये उसकी सन् १८९९ से प्रारंभ पद्धति का जो फाउलर कमिटीकी रिपोर्ट और उसकी सिफारिश के कारण प्रचलित की गई थी, उल्लेख करना उचित है। सन् १९१४में युद्ध प्रारंभ होने के पूर्व तक वह वैसी ही बनी रही। इस कालमें अर्थात् युद्धके समय उसकी जैसी दशा रही उस पर हम किसी दूसरे प्रकरणमें विचार करेंगे। तथापि भारतीय करन्सी पद्धति को ठीक ठीक समझने के लिये १५ वर्ष का संक्षिप्त विवरण दे देना ही समुचित होगा।

फाउलर कमिटी की सूचनायें और सरकार का कार्य।

जब व्यक्तिगत आवश्यकता पर व्यक्तियों के लिये टकसालों

मे रुपये ढालना बन्द कर दिया गया उसी समय समीप भविष्य मे सरकार सोनेका सिक्का,भारतीय सोनेका सिक्का,चलाने का विचार कर रही थी। यह सम्भवतः इस विचार से था कि गवर्नमेन्ट के १८९३ के नोटिस से टकसालों में सोने का सिक्का या सिल नोट और रुपयों के बदले मे प्रति रुपया १ शि० ४ पें० के हिसाब से ली जाने लगेगी। साथही सरकारी रुपया चुकाने मे अंग्रेजी पौंड और अर्द्ध पौंड भी उसी प्रकार लिये जायँगे। किन्तु चांदी का भाव गिर जाने से उस समय यह विचार कार्य रूप मे परिणित न हो सका। सन् १८९२–९३ मे एक्सचेंज की औसत दर प्रति रुपया १ शि ३ पें थी। आगे दो वर्षोंमे भाव और भी गिरगया यहा तक कि १८९४-९५ में वह प्रति रुपया १ शि १ पें ही रह गया सन् १८९३के पूर्वतक जो रुपया ढलचुका था उसकी चलते सिक्केमें माग बढने लगी और सरकार उसे पूरी करने लगी। परन्तु जब सरकार ने और अधिक रुपया ढालना बद कर दिया और बराबर ६ साल तक यही दशा रही तो रुपये की कीमत बढ गई, यहा तक कि सन् १८९९ में वह १ शि० ३ ८ पेंस हो गई, अर्थात् सन् १८९३ के नोटिस के अनुसार सरकार जो भाव चाहती थी उससे दो पेंस ही कम रहा। इसी समय फाउलर कमेटीने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और भारत में सोने का सिक्का चलानेकी सिफारिश की। वह इस प्रकार संक्षेप में है —

भारत में सोने का सिक्का चलाया जाय और रुपया चिन्ह सिक्का रहे और उसका मूल्य $\frac{1}{15}$ पौंड रहे। सर्व साधारण के लिये

सोने का सिक्का ढालने के लिये टकसाले खोल दी गईं। पर चादी के लिये वे बद ही रहीं, और रहनी ही चाहिये, क्योंकि रुपया प्रचलन सिक्का होने के कारण उससे बडा लाभ होता था और फलत यह लाभ सरकार और उसके साथियों को ही मिलता था। चादी का इस प्रकार स्वायत्तीकरण कर लेने से जो लाभ होता वह सोने के रूप में जमा कर रखा जाता और यह सोने के सिक्के ढालने के काम में आता।

कमेटी की शिफारिशों के अनुसार कार्य करने मे गवर्नमेंन्टका पहला काम पौंड को भारत मे १५, ९० में चलाकर उसे चलता सिक्का बना देना ही था। उसने रुपये को अपरिमित प्रचलित सिक्का रखा अतएव इसकी बहुत अभिवृद्धि हुई साथ ही सोने के सिक्कों के एक बहुत थोटे अश को भी उनने अपरिमित चलता-सिक्का बना दिया। रुपये की बढती हुई आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये और रुपया ढालने की आवश्यकता हुई। रुपये से सरकार को बहुत लाभ हुआ। सन् १९०१ में जब १८९३ के उपरात पहली बार नये रुपये ढाले गये तो उसके लाभ ही से सोने का रक्षित कोष बनाया। इस कोष के रखने का उद्देश्य यह था कि भारत में सोनेका सिक्का चलाने मे और सुविधा हो जाय और साथ ही रुपये का भाव भी यही बना रहे, जैसाकि १८९९में निश्चितकर लिया गयाथा। भारत में सोनेका सिक्का चलानेके लिये भारत सरकार चार वर्ष होम गवर्नमेन्ट से लिखा पढी करती रही। पर जब न

यही निश्चय हुआ कि पौंड भारत में चलाया जाय अथवा भारत का ही कोई नया सिक्का बनाया जाय तो मामला ठंढा पड़ गया। इसके उपरान्त भारत सरकार ने अपने अन्तिम निश्चय के अनुसार सोने का सिक्का भारत में चलने का प्रयत्न किया। उसने डाकखानों तथा उनके अधिकारियों से कहा कि वे गवर्नमेन्ट की प्रत्येक माग पर सोना ही दिया करें। इस प्रकार मार्च १९०४ तक ७ करोड़ रुपये का सोना भारत में प्रचलन में कर दिया। इसका कुछ अंश तो प्रचलन में रहा, किन्तु अधिकांश गवर्नमेन्ट के पास ही लौट आया। अतः भारत में सोने के सिक्के की स्थिति इस प्रकार है,—भारत सरकार का कोई अपना सोने का सिक्का नहीं है। सन् १८९९ के ऐक्ट के अनुसार सावरिन अर्थात् पौंड भारत में भी चलता सिक्का मानलिया गया और उसका मूल्य १५ रु निश्चित हुआ। इस प्रकार गवर्नमेन्ट प्रत्येक पौंड के प्रति १५ रु. देने के लिये वाध्य है। किन्तु इसके विरुद्ध निश्चित दर में वह रुपये के बदले सोने का सिक्का या सिल देने के लिये वाध्य नहीं।

स्थानीय प्रचलन में प्राय ऐसे सिक्के ही अधिक हैं, जिनका प्रचलन मूल्य वास्तविक मूल्यमें बहुत अधिक है। सन् १८९–१९०४

१—भारत में सोने के सिक्कों का परिमाण जो भिन्न २ वर्षों में सर्वसाधरण के हाथ आये। (शामूँ पाद में। (उधर—

के थोड़े से प्रयत्न के पश्चात् प्रचलन में और अधिक सावरिन नहीं आये। हां, वे रह गये जो व्यापार कार्य में बाहर से आते थे। किन्तु सेक्रेटरी आफ स्टेट ने इन्हें भी न आने देने का यथा सम्भव प्रयत्न किया। उनने कहा कि वे भारत को हुन्डिया देंगे जिनका भाव प्रति रुपया १ शि० ४½ पें० होगा। इस प्रकार फाउलर कमीशन का विचार विफल हुआ, कारण कि भारत में न सोने का निश्चित सिक्का है न सोने की करन्सी है, और न सोने के लिये मुफ्त टकसाल है। इनके बदले एक नवीन प्रणाली का विकास हुआ।

इसके पूर्व कि हम वर्तमान प्रणाली का विचार करें, दो बातें जान लेना अत्यावश्यक है। इनमें से पहली बात सिक्कों के

वर्ष	सर्वसाधारणके हाथोंमेंआयेपौंडोंकापरिमाण	वर्ष	सर्वसाधारणके हाथोंमेंआयेपौंडोंका परिमाण—
	पौंड		पौंड
१९०१—०२	६६७	१९०८—०९	३,४४३
१९०२—०३	२,१६८	१९०९—१०	२,८८८
१९०३—०४	३,२७८	१९१०—११	८,०६१
१९०४—०५	२,६३७	१९११—१२	८,८८१
१९०५—०६	३,७३२	१९१२—१३	११,३००
१९०६—०७	५,१५६	१९१३—१४	३,६०७
१९०७—०८	७,४२७	१९१४—१५	५,६२३

१—सन १९१९ की करन्सी रिपोर्ट के अनुसार भारत सरकार ने पौंड का मूल्य १० रु० कर दिया है।

सुधार से सम्बन्ध रखती है। सन् १८३५ में एक ही सिक्के के प्रचलन से लेकर सन् १८९३ में टकसाल बंद होने के समय तक अर्थात् ६० वर्षों में सिक्कों के सुधार, उनके आकार प्रकार, परिवर्तन और खोटे सिक्कों के निकाल लेने के लिये कोई नियमित प्रयत्न न किया गया। पुराने सिक्कों में से अधिकांश खराब हो गये थे। परन्तु वे नये सिक्कों के साथ एकही भाव पर चलते थे। फल यह हुआ कि नये २ सिक्के तो जोड़ २ कर धर लिये गये और खराब पुराने सिक्कों की प्रचलन में भरमार रही। सन् १८९५ में भारत सरकार ने सुधारके प्रथम पदानुसार यह आज्ञा निकाली कि प्रान्तीय बैंक और सार्वजनिक कोष सन् १८३५ का जो रुपया पायें फिर उसे न चलायें। इसके पाँच वर्ष बादही १८४० के सिक्कों के लिये भी यही आज्ञा निकाली गई। फल यह हुआ कि ३१ मार्च सन् १९०४ तक १८३५ के २३ करोड और १८४० के १४ करोड रुपये प्रचलन से निकल आये। किन्तु टकसालें पुराने सिक्के को बदलने में अब भी संलग्न थीं साथ ही वे देशी राज्यों के लिये भी सिक्के ढालती थी, जिनने अंग्रेजी रुपये को अपने यहां स्वीकार कर लिया था। सन् १८९३-४ और १९०३-४ तक टकसालों में बने रुपयों की संख्या ५५ ९ करोड थी, इनमें से २९ ७ करोड़ रुपये करन्सी में बिल्कुल नये प्रचलित किये गये।

दूसरी बात देशी राज्यों की करन्सी के सम्बन्ध में है। मुगल साम्राज्य का अस्त होते ही अनेक देशी राजाओं ने स्वय ही सिक्के

बनाने का अधिकार लेलिया और ब्रिटिश अधीनता मे आजाने पर भी वह अधिकार उनसे न छीना गया। पर इसमे सदेह नहीं कि इन राज्यों के जैसे पजाब, नागपुर, अथवा अवध के, स्थानीय सिक्कों का स्थान अंग्रेजी रुपये ने लेलिया। फिर भी १८९३ मे ऐसे ३४ राज्य थे जो अपना सिक्का, जिस पर राज्य चिन्ह होता था स्वय बनाते थे और वही राज्य की सीमा के अन्तर्गत प्रच लित था। इन सिक्को का वजन और शुद्धता अंग्रेजी रुपये से बिल्कुल भिन्न थी और इसी से स्थानीय व्यापार मे बड़ी कठिनता पडती थी। १८७६ के कानून के अनुसार गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया कि वह देशी राज्यों को अंग्रेजी रुपये की तरह उतने ही वजन और शुद्ध धातु के सिक्के अपने राज्य मे चलाने के लिये कहे और ये सिक्के अंग्रेजी राज्य मे भी लिये जायँगे। देशी राज्यों को भी अधिकार दिया गया कि वे अंग्रेजी टकसालों में अपने सिक्के ढलवाने के लिये चादी भेजें। किन्तु केवल अलवर और बीकानेर के राज्यो ने ही इस अधिकार से लाभ उठाया। देशी राज्यो और उनकी प्रजा को अंग्रेजी राज्य के निवासियों का रुपया चुकाने में बहुत हानि उठानी पडती थी। उदाहरणार्थ कच्छ राज्य की कौरी का जो एक रुपये के ? के बराबर थी, और जिसका रुपये से परिवर्तन का मूल्य निश्चित हो चुका था, (३७१ कौरी=१०० रु०) भाव इतना गिर गया कि सन् १९०० में ६०० कौरी १०० रु० के बराबर हो गई। सन् १८७६ का कानून इन नई शर्तों के लिये लागू न था, पर

उनका चालू सिक्का प्रचलित बाजार भाव में लेना और बदले में अंग्रेजी रुपया देना उनने स्वीकार किया। १६ राज्यों ने, जिनमें कश्मीर, बड़ौदा, ग्वालियर और भोपाल भी सम्मिलत थे, यह प्रबन्ध स्वीकार कर लिया, किन्तु १४ राज्य अब भी इस से अलग हैं।

अब हम वर्तमान पद्धति के कार्य का विचार करेंगे। सोने का एक्सचेञ्ज परिमाण, जब तक कि अन्तर्राष्ट्रीय ऋण चुकानेके लिये नियत मूल्य पर लभ्यहै, तबउस के ठीक राष्ट्रीय मुद्रा होने न होने में घोर अन्तर पाया जाता है। ऐसा कहा गया है कि यह पद्धति उन्नत सभ्य राष्ट्रों को एक न एक रूप मे स्वीकार करनी ही पड़ती है। अन्य देशों में जैसे कि भारत में अन्तर्राष्ट्रीय ऋण-शोध के लिये सोने की बचत करना बड़ा ही आवश्यक समझा जाता है, वे यह कार्य या तो सोना खूब एकत्र कर करते हैं, अथवा नाजुक अवसर में सोने का अबाधित रूप से देना बंद कर देते हैं अथवा विदेशी हुण्डियों का यथेष्ट संग्रह रखते हैं। इनमें से पहली रीति इंग्लैंड ने स्वीकार की है, दूसरी फ्रांस ने और तीसरी मुख्यत आस्ट्रिया और रूस ने स्वीकार की है। ये समय पड़ने पर सोना बाहर भेजने के बदले अपनी विदेशी हुण्डिया विदेशी बाजारों म बेंच देते हैं और इस प्रकार यथेष्ट परिमाण में सोना एकत्र कर लेते हैं। यह पद्धति ऋणी देशों के लिये, जिन्हें लेना मिलता तो कम है किन्तु देना अधिक पड़ता है, अत्यन्त सुविधा जनक है। इसके लिये इनके पास सदैव

यथेष्ट परिमाण में सोना रहना चाहिये। किन्तु यदि उनका सोना दूर २ तक लोगों के हाथ में बना रहे और आवश्यकता पड़ने पर एकत्र न हो सके तो यह आवश्यकता कदापि पूर्ण नहीं की जा सकती। इसके लिये यदि उनके पास स्वर्ण कोष रहे तो बड़ा अच्छा हो। किन्तु ऐसा करना भी व्यर्थ होगा यदि दस वर्ष में एक बार भी माग न पूरी की जाय। इससे तो यही उत्तम है कि विदेशी हुण्डिया रखी जायें और आवश्यकता पड़ने पर उन्हीं के द्वारा सोने के रूप में ही विदेशों को धन दिया जाये।

इस सम्बन्ध में भारत की दशा कुछ विचित्र है। साधारणतया भारतवर्ष एक ऋणी देश है। उसे सदैव ऋण पर ब्याज चुकाना पड़ता है, नौकरों की पेन्शन और फर्लो अलाउन्स देना पड़ता है इत्यादि। यह होम चार्ज—घर का खर्च कहलाता है और भारतवर्ष इसे इग्लैंड को सोने के रूप में देता है। इसकी संख्या २ करोड़ पौंड है। यह धन कम्पनी के समय से ही इस प्रकार दिया जाता है कि होम गवर्नमेन्ट भारत सरकार पर हुण्डी निकालती है। ये हुण्डिया विदेशी हुण्डिया या कौंउन्सल बिल के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस होम चार्ज में से भारत सरकार के कारण इग्लैंड में जो ऋण लिया गया वह कम होना चाहिये। युद्ध के पूर्व भारतवर्ष प्रत्येक वर्ष लन्दन के बाजार में निश्चित ऋण लेने वाला था, अतएव भारत सचिव का होम चार्ज के लिये धन परिमाण बहुत कम होगा, सभवत. १५,०००,००० पौंड होगा। किन्तु इसके विरुद्ध

भारतवर्ष को सदैव व्यापार के कारण इग्लैंट से बहुत धन मिलता था, जो कि उस पर शेष रह जाता था। अत रुपया देने की दो रीतिया थीं। एकतो भारत से इग्लैड को होम चार्ज दिये जाते थे जिनका परिमाण कुल घटा कर १५,००० ००० पौंड होता था और दूसरा इग्लैंड द्वारा भारत को दिया जाता था और इसका परिमाण होम चार्ज मे अधिक था। भारत की वर्तमान करन्सी पद्धति के निर्माताओं ने रुपये का मूल्य स्थिर रखने का उपाय ढूढ लिया। सन् १९०४ में तदनुसार भारत सचिव ने यह प्रकट किया कि वे हिन्दुस्तान पर १ शि० ४ऽ पें० के हिसाब से अनिश्चित हुण्डिया बेचेंगे, और आधुनिक गोल्ड एक्स चेंज के प्रमुखों ने इस मे करन्सी की बहुत ही उपयोगी बचत की साथ ही वैज्ञानिक पद्धति ढूढ निकाली।

इस प्रकार कार्उन्सिल बिल पर सारी पद्धति का कार्य चल रहा है। इस पद्धति का आलोचनात्मक विचार करने के पूर्व इन बिलों के बेचने के क्रम का संक्षेप में उल्लेख कर देना उचित है। प्रति सप्ताह भारत सचिव द्रव्य का परिमाण जिस पर कि वे भारत को हुण्डी बेचने के लिये तयार है, प्रकट कर देते हैं। इसका सुरक्षित मूल्य न्यूनातिन्यून होता है जो किसी को नहीं मालूम होता। बुधवार के दिन प्रात काल इग्लैंड बैंक में टेंडर के लिये बिल दिये जाते है। टेंडर से द्रव्य का परिमाण जानलिया जाता है जिसे वे मोल लेने को तैयार है और रुपये का मान भी

पंनी के रूप मे जान लिया जाता है जितने पर कि वे लेने को तयार है। सबसे ज्यादा बोली बोलने वाले को वह दे दिया जाता है और उसी समय आगामी सप्ताह मे बेंचेजाने वाले द्रव्य का परिमाण भी बता दिया जाता है। उस सप्ताह में यदि माग चटक रही तो यह द्रव्य अधिक होगा। इन बुधवारों के बीच में भी कुछ बिल बेंचे जाते है जो स्पेशल कहलाते हैं और उनका भाव प्रति रुपया १ शि० ३२ पें० रहता है। यह भाव आगामी बुधवार को सबसे अधिक बोली के मूल्य से भी अधिक रहता है। इन बिलों के लेनेवाले को नकद दाम देना पड़ते हैं और तब वे भुनाने के लिये हिन्दुस्तान भेज दिये जाते हैं। जैसा कि पहले था साधारणतया मेल १५ दिन मे हिन्दुस्तान पहुँचताथा अतएव, जब तक लदन मे पन्द्रह दिन पीछे सोने के रूप में उनका चुकौता (Payment) न होजाताथा तब तक वे भारतमें रुपयेके रूपमे नहीं दिये जाते थे। इसी लिये जो पन्द्रह दिनके लिये अपनी रकमके ब्याज को नहीं खोना चाहते थे वे तार द्वारा ट्रान्सफर होने की खबर भारत मे भेजने के लिये कुछ अधिक जमा कर देते हैं। यह ब्याज अनुमान ५ प्रति सैकडा या एक हजार पौंड पर २ पौंड अर्थात् ½ पेंस प्रति पौंड होता है। तार द्वारा खबर देनेसे इगलैंड में जमा करने के कुछ ही घंटे बाद हिन्दुस्तान में जमा कर लिया जाता है। सेक्रेटरी आफ स्टेट ऐसे ट्रान्सफर प्राय १ शि० २ पें० के हिसाब मे भेजा करते हैं। ये हुन्डिया अथवा ट्रान्सफर मद्रास, कलकत्ता और बम्बई मे अदा किये जा सकते हैं और यह अदायगी रुपया या नोटो के रूप में होसकती है।

इस प्रकार काउन्सिल बिलें का पहले से अधिक विस्तार है। १९०० के पूर्व होमचार्ज देने के लिये ये भारत और इग्लेंड मे परस्पर द्रव्य के परिवर्तन का काम करते थे। किन्तु इस सन् से भारत मे सोना भेजने का काम करने लगे। इसके अनेक कारण हे –(१) १¾ प्रति सैकडा नफा अथवा होमचार्ज के अतिरिक्त प्रति दस लाख पीछे १५००० पौंड अधिक बेचे जाते है। १५ रु० प्रति पौंड के हिसाब से भारत में पौंड के बदले में मदा रुपये मिल सकते हैं अत बैंक भारत को सोना ही भेजेंगे और काउन्सिल बिल न खरीदेंगे, क्योंकि जितना व्यय भारत को सोना भेजने में होता है, बिल का भाव उससे अधिक हुआ तो उसके खरीदने से क्या लाभ? व्यापार की गतिविधि के अनुकूल भाव बदला करता है। पर युद्ध के पूर्व २ पेंस प्रति पौंड से कदापि अधिक न था। जिस समय बैंकों को भारत में रुपयों की जरूरत होती है उस समय यदि भारत सचिव १ शि०४ पेंस से कम में न बेंचेंगे तो सोना भेजा जायगा। इसी सोने द्वारा भारत में रुपयों का परिवर्तन हो जायगा और यदि यही दशा रही तो भारत सरकार को अधिक रुपये बनाने के लिये इग्लैंड से चादी खरीदनी पडेगी। चादी का मूल्य सोने के रूप में देना पड़ेगा अर्थात् जो सोना खजाने मे जमा होगया है वही जहाज द्वारा इग्लैंड भेज दिया जायगा। इस प्रकार भारत सोने से भी हाथ धो बैठेगा।

१ इन कौंसिल बिलों–विलायती हुंडियों का बेचना भारत सरकार ने बंद कर दिया है।

यों भारत को दोनो ओर से हानि होगी। एकतो भारत सचिव के १ शि ४$\frac{1}{8}$ पेंस से कम में न बेंचने पर $\frac{3}{32}$ पेंस प्रति रुपये की हानि होगी और फिर इग्लेंड को सोना भेजने का व्यय जिस मे प्रति रुपया $\frac{3}{8}$ पेंस की कुल हानि होती है। (२) इसके अतिरिक्त करन्सी कोष में सोना रखने से इग्लेंड का स्वत का लाभ है क्योंकि यदि नीति पलट जाय और भारत सरकार को इग्लैंड पर स्टर्लिंग ड्राफ्ट निकालने पडे तो उनकी अदायगी के लिये भी तो फन्ड होना चाहियें। ऐसे फंड न होनेपर भारत सरकार को सोना भेजना पडेगा जिससे एकतो अधिक व्यय होगा और दूसरे यहभी संभव है कि आवश्यकता पड़ने पर सोना न मिले। (३) इसके प्रतिरिक्त काउन्सिल बिल के फ्री बेंचने से भारत का बाकी बचा हुआ रुपया इग्लेंड को परिवर्तित किया जासकताहै और इसप्रकार व्यपारमें भारतकी साख बढ़ेगी। यदियह न भी हो तो भी भारत सचिव को केवल व्याज के रूप मे ही लाभ होगा। इसी मे भारत सचिव ने हिसाब से बिल बेंचे है, जिससे न केवल इग्लैंड मे ही भारत को सोना आना रुक गया है प्रत्युत इजिप्ट और आस्ट्रेलिया से भी रुक गया है।

ऊपर हमने कई बार स्वर्ण कोष का उल्लेख किया है। हमे इस कोप की उत्पत्ति और वर्तमान स्थिति के विषय मे कुछ कहना है। खजाने वगैरा के अतिरिक्त भारत सरकार के दो और कोष हैं एक तो पेपर करन्सी कोष और दूसरा गोल्ड स्टैंडर्ड कोष। यद्यपि दोनों का अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्ध है तथापि

स्पष्टता के लिये हम दोनों का अलग २ वर्णन करेंगे। इनमें से इस परिच्छेद में हम सोने के सिक्कों के विषय में ही लिखेंगे। कागजी सिक्के का वर्णन हम दूसरे प्रकरण में करेंगे। इसका प्रारंभ १९०१ से होता है। यह सोने के रिजर्व फंड की तरह खोला गया। रुपये ढालने में जो ३००००००० पौंड लाभ हुआ उसी से इसका प्रारंभ हुआ। ज्यों २ रुपये की मांग बढ़ती गयी त्यों २ अधिक रुपये बनाये गये और वैसा ही अधिक लाभ होने लगा और फंड की तरक्की होने लगी। हमें यहां सरकार की रुपये ढालने की नीति के गुणों का वर्णन नहीं करना है, कहने का तात्पर्य केवल यह है कि रुपये बहुत ही शीघ्र २ बनवाये गये और इस प्रकार फंड की दिनों दिन तरक्की होने लगी। ३१ मार्च सन् १९०६ के दिन इसमें १ करोड़ २०½ लाख पौंड थे। इस वर्ष के पिछले आधे हिस्से में व्यापारिक आवश्यकता के लिये सिक्कों की मांग बढ़ी। इतनी शीघ्र मांग बढ़ना रोकने के लिये गोल्ड रिजर्व फंड की एक शाखा सिलवर रिजर्व फंड के नाम से खोलदी गई। यह प्रस्तावित हुआ कि इसमें ६ करोड़ रुपये रखे जायें।

अब इसकोष में १ करोड़ ७० लाख पौंड हो गये थे। जिसमें १ करोड़ २०½ लाख तो इंग्लैंड ही में थे, ४० लाखपौंड भारत में रुपये के रूप में थे और शेष भारत में सोने के रूप में थे। कुछ दिनों तक तो इस फंड का नाम सोने चांदी का कोष रहा पर १९०७ में इसका नाम स्वर्ण कोष ही रहगया। १९०८

की घटनाओं से यह प्रगट हो गया कि इस कोष सम्बन्धी नीति मे बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। १ सितम्बर १९०७ मे पोंड रिजर्व की स्थिति इस प्रकार थी —

सोना

भारत में पेपर करन्सी रिजर्व	४,१००,००० पौंड
लदन में ,, ,, ,,	६,२००,००० पौंड
शीघ्र ही आने वाला द्रव्य.	
गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व (लदन)	५०,००० पौंड
नकद बाकी (लदन)	५,१५०,००० पौंड
अमानत	
करन्सी कोष मे	१,३००,००० पौंड
गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व में	१४,१००,००० पौंड
	३०,९००,००० पौंड

इस प्रकार भारत सचिव के पास प्राय ३ करोड १० लाख पौंड थे, जब कि एक घटना होने का किसी को सन्देह तक न था। इनमें से प्राय ⅓ नकद था और शेष इधर उधर फैला हुआ था अथवा कर्ज दिया गया था। इन नकद में भी केवल ४,१००,००० पौंड सोने के रूप में भारत में थे और शेष लदन मे थे। इसके उपरान्त एक घटना हुई। सन् १९०७ में वर्षा कम हुई और फसल मारी गई। भारत से निर्यात में कमी हो रही थी

का बाकी धन खटकने लगा। इसी समय अमेरिका की आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त बिगडी हुई और नाजुक हो रही थी। नवम्बरके प्रारभ मे इग्लैंड बैंक ने अभूत पूर्व सोने की माग से डिस्काउंट की दर बढा दी। इसका प्रभाव भारत सचिव पर पडा और वे ६ नवम्बर को केवल २००,००० पौंड के ही बिल बेच सके। इसके उपरान्त कई सप्ताह तक वे एक भी बिल न बेंच सके। और हुण्डी के बाजार से अलग हो जाने के अतिरिक्त होमगवर्नमेन्ट ने अवस्था से सामना करने का और कोई उपाय न किया। अपने सदा के आधार से विहीन भारत सचिव लदन की करन्सी रिजर्व के सोने के हिस्से से अपना व्यय चला रहे थे। उसी समय भारत में सोना भेजने की घोर आवश्यकता बढ रही थी। किन्तु अवस्था एक दम नई होने के कारण भारत सरकार ऐसा करने के लिये तत्पर न थी। रुपये का मूल्य जो १ शि ४ पेंस से भी अधिक था अब गिरने लगा यहा तक कि २५ नवम्बर १९०७में उसका भाव १ शि ३$\frac{1}{16}$ पे ही रहगया। भारत सरकार बाहर भेजने वालो को सोना देने के लिये राजी न थी अतएव सरकार ने एक दिन में १०००० पौंड से अधिक का सोना बाहर भेजने के लिये देना अस्वीकार किया। दशा बढती ही गयी और अन्तत दिसम्बर मे फिर काउन्सिल बेचे जाने लगे और सरकार ने रुपये की कीमत स्थिर रखने के लिये कठिन से कठिन उपाय किये। उनने तार द्वारा निश्चित दर हुन्डी हस्तातरित करना स्वीकार किया और यह अन्त में स्टर्लिंग बिल के

रूपमे परिवर्तित हो गया, जिसका कमसे कम निश्चित मूल्य १ शि० ३३३ पें० प्रति रुपया था। नियतको ने एक दम इससे लाभ उठाया और तीन ही मास मे लदन का लभ्य स्वर्ण कोष खाली पड गया। दशा नाजुक होती चली, भारत में ५००,००० पौंड प्रति सप्ताह के हिसाब से बिल बेंचे जाते थे, आगे यही १,०००,००० पौंड प्रति सप्ताह बेचे जाने लगे। ये लदन में गोल्ड रिजर्व मे स्टर्लिंग सिक्योरिटी की आमद से लदन मे केश किये जाते जाते थे। अगस्त १९०८ में १ करोड़ ४० लाख अमानत मे से दशा सुधारने के लिये ८,०००,००० पौंड बेचे गये। सितम्बर १९०८ के प्रारभ मे स्थिति इस प्रकार थी —

सोना —	१९०७ पौंड	१९०८ पौंड
भारत मे करन्सी कोष	४,१००,०००	१५० ०००
लदन मे करन्सी कोष	६,२००,०००	१,८५०,०००
शीघ्रही आने वाला द्रव्य —		
गोल्ड स्टेंडर्ड रिजर्व (लदन)	५०,०००	शून्य
नकद बाकी [लदन]	५,१५०,०००	१,८५०,०००
अमानत पौंड के रूप में:—		
करन्सी कोष में	१,३००,०००	१,३००,०००
सोनेके सिक्के के रूपमे	१४,१००,०००	६,०००.०००

१९०७ में भारत सचिव के पास ३ करोड १० लाख पौड थे अब एक वर्ष उपरान्त उनके पास ११,०००,०००

पौंड हो गये। भिन्न २ कोषो से २ करोड पौंड काम में लाने के अतिरिक्त भारत सचिव ने भारत के लिये गये ४,५००,००० पौंड के ऋण से भी बहुत सहायता ली। इस प्रकार एक ही वार में भारत सचिव की दशा को २५,०००,००० पौंड की बना कर कमजोर कर दिया। यदि दूसरे वर्ष भी यही दशा रहती तो अवश्यही अधिक ऋण लेना पड़ता।

वर्तमान भारतीय पद्धति विषयक सभी आवश्यक बातो का विचार हम संक्षेप कर चुके हैं, किन्तु इस समय हम यदि बातो का आलोचनात्मक परीक्षण न करें तो हमारा कार्य अधूरा रह जायगा। सन् १९०७–८ की घटना से सिद्ध हो गया कि भारत मे सोने के सिक्के पर जगद्व्यापी कठिनता के समय मे कठोर आक्रमण होना संभव था। किन्तु सरकार ने ऐसी नीति धारण की और उसी समय वह इग्लैंड में वह सोने के सिक्के की आमद को बढाती गयी, कि इस पद्धति के आलोचकों ने इसकी जो बुराइया बतलाईं थीं उनका कुछ भी प्रभाव न पडा। सन् १९१३ मे एक राजकीय कमीशन की स्थापना हुई जिसके अनुसार भारत सरकार की साधारण बाकी रकम की जाच की गई, लंदन में बिल और ट्रान्सफर बेंचने की जाच कीगई, भारत सरकार और भारत सचिव द्वारा रुपये की क़ीमत स्थिर रखने में जो उपाय काम में लाये गये थे उनकी भी जाच को गई, और विशेष कर कागजी सिक्कों के कोष की अवस्था और गति का निरीक्षण किया गया, यह भी देखा गया कि इन बातों के सम्बन्ध में जो

उपाय किये जा रहे हैं वे भारत के लिये हित कर हैं या नहीं, इन्डिया आफिस की साम्पतिके स्थिति की रिपोर्ट और सिफ़ारिशो के लिये भी इस कमेटी की प्रस्थापना हुई। रिपोर्ट में वर्तमान पद्धति की सरक्षा के लिए सिफ़ारिश थी अतएव उसके आलोचक अत्यन्त अप्रसन्न हुए। हमें आलोचको की आलोचनीय बातों और पद्धति के निर्धारकों की समर्थक बातों का विचार करना है। हम आलोचनीय स्थलों का सार यहा लिखते हैं —

१८९८ की करन्सी कमेटी के दूसरे ही वर्ष जिस पद्धति का विकास और परिपोषण हुआ वह कमेटी की सिफ़ारिशो से बिलकुल भिन्न है। सरकार ने सोने के सिक्कों के प्रचलन के साथ सोने की मुक्त टकसालों के लिए सर्व साधारण के सम्मुख कमेटी की सिफारिशो को स्वीकार किया था, किन्तु कुछ समय उपरात ही एक साधारण प्रयत्न के अतिरिक्त सरकार ने कमेटी की सिफारिशों को पूर्ण करने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया। यहा हम इसी बात का विचार करेंगे पद्धति में जिस साधारण सन्तोष का जिक्र है और जिसका आधार वैज्ञानिक है, जहा तक उसका भारतसे सम्बन्ध है वहा तक उसका उत्थापन समुचित नहीं हुआ है। यद्यपि भारत एक ऋणी देश है तथापि उसका निर्यात जैसाकि निम्न अकों से प्रगट होगा प्रति वर्ष बढ रहा है, जहा तक अन्तर्राष्ट्राय ऋण का सम्बन्ध है वहां तक भारत का कुछ न कुछ नकद रूप में लेना ही बाकी रह जाता है, देना नहीं, और यह भी होम चार्ज निकाल देने बाद।

सूची जो आयात और होमचार्ज से निर्यात की अधिकता प्रगट करती है।

(सहस्रों पौंड के रूप में)

वर्ष	+ आयात	‡निर्यात	अधिकता	होम चार्ज
१८९९—१९००	५० २००	७२,४६३	२२,२६३	१६,१२९
१९००— ०१	५३,९२९	७१,८१२	१७ ८८३	१६,९८२
१९०१— ०२	५६,१८७	८३,२६३	२७,०७६	१६,८७७
१९०२— ०३	५७,२१२	८६,२६४	२९,०५२	१७ ६६७
१९०३— ०४	६१,७२८	१०२,३४४	३४,६१६	१७,३९९
१९०४— ०५	६९,६०८	१०५,१४८	३५,५४०	१८,८२७
१९०५— ०६	७४,७४२	१०७,८९०	३३,१४८	१७,६६६
१९०६— ०७	७८ १६१	११८,०१९	३९,८५८	१८,३३३
१९०७— ०८	९१,०२५	११८,३२२	२७,२९८	१७,७६८
१९०८— ०९	८५,८५२	१०२ ०९५	१६,२४३	१८,३२३
१९०९— १०	८१,७६५	१२५,२७५	४३,५४०	१८,४३१
१९१०— ११	८६,१३३	१३६,९०४	५०,८६१	१८,६०५
१९११— १२	८६,०३७	१५१,९९३	५५,९५६	१८,८६५
१९१२— १३	१११,०८६	१६४,१४६	४३ ०६०	१९,३०२
१९१३— १४	१२७,५४०	१६६,००५	३८,४६५	१९ ४५५
१९१४— १५	९६,६२१	१२१ ४५०	२४,८२९	१९,५२५
१९१५— १६	९१,५००	१३३,०००	४२,३००	१९,४०३

+गवर्नमेंट स्टोर्स भी इसी में सम्मिलित हैं।

‡निर्यात के अंकों में पुनर्निर्यात भी सम्मिलित है।

इन अकों मे विदित होताहै केवल कि १९०८–०९ मे बाकी की रकम भारतके प्रतिकूल थी। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय ऋण चुकाने के लिये सोने के अच्छे कोष की आवश्यकता भारत में अधिक प्रबल नहीं है। अन्य ऋणी राष्ट्रों को यह देखना चाहिये कि प्रचलन गत स्वर्ण, यदि उनके यहा सोने के सिक्कों का प्रचार है, इतना अधिक नहीं फैल जाता कि बाहर भेजने के लिये उन्हें हाथ फैलाना पडे। किन्तु भारत में सोने के निर्यात की आवश्यकता–जो भारत के निर्यात की कमी को प्रकट करती है–कभी २ हुआ करती है। जब दस वर्ष मे एक बार आवश्यकता पडती है तब कागजी सिक्कों का साधन ही आवश्यकता से अधिक होता है। हम सरकार के वसीलो के बारे में कह रहे है, क्योंकि सरकार को होमचार्ज देना पड़ता है अतएव एक्सचेंज के बाजार मे उसी की मुख्यता रहेगी। अगले प्रकरण मे हम इस बात का विचार करेगे कि यदि हमारा कागजी सिक्का सोने पर स्थिर रहे तो क्या वह चादी की तरह सोने की भी बचत कर सकेगा? व्यापारिक समुदाय की आवश्यकता के सम्बध में सिक्को की बातरतीब तादाद के सम्बन्ध मे भी जब हम अनिश्चित विदेशी हुण्डियो का विक्रय देखते है तो क्या साधारण व्यापारिक सस्थाए इस काम को नहीं कर सकतीं? इसमे ही कौन सी विशेषता है और विशेषकर जब कि हम उसे इस कार्य में असफल देख रहे हैं। अतएव प्रस्तुत पद्धति यद्यपि ऋणी देशों के लाभार्थ है तथापि भारत जैसे देश के लिये वह अनुपयुक्त है।

२. भारत की रोकड़ बाकी के भारतीय तथा इंग्लैंड के प्रबन्ध सम्बन्ध में भी अभी बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। नीचे भारत सरकार की रोकड़ बाकी और बजट की कमी और बढ़ती के सम्बन्ध में सूची दी जाती है।

वर्ष *	रोकड़ बाकी § भारत में	रोकड़ बाकी इंग्लैंड में ‡	बढ़ती या कमी	विशेष
	पौंड	पौंड	पौंड	
१८९९—१९००	८,४२६	३,३२१	+२,७७४	* यह रोकड़ बाकी वर्ष के अन्त में समझी जाय।
१९००—०१	१०,५९९	४,०९२	+१,६१०	
१९०१—०२	११,८८०	६,६६३	+४,९४२	
१९०२—०३	१२,०८२	५,७६८	+३,०६८	§ इन अंकों में रिजर्व ट्रेजरी और प्रेसीडेन्सी की बाकी भी सम्मिलित है।
१९०३—०४	११,८७०	७,२८५	+२,९९७	
१९०४—०५	१०,७५०	१०,२६३	+३,४४६	
१९०५—०६	१०,७८१	८,४३७	+२,९०२	
१९०६—०७	१०,३२८	५,६०७	+१,५८९	
१९०७—०८	१२,८२२	५,७३८	+३०४	
१९०८—०९	१०,२२६	८,४५४	३,७०८	
१९०९—१०	१२,२९५	१५,८१०	+६०७	‡ भारत सचिव के प्रति बाकी के अंक इन में सम्मिलित हैं।
१९१०—११	१३,५६७	१८,१०४	+३,९३६	
१९११—१२	१२,२८०	१६,४६४	−३,९४०	
१९१२—१३	१६,४४३	११,४२९	+३,३६१	
१९१३—१४	१५,६०८	१२,४७७	+८८७	
१९१४—१५	१४,७१५	९,१६३	−१,९२९	
१९१५—१६	१२,०१५	१०,८२४	−२,६४४	

सन् १९०३ से भारतसरकार की यह नीति रही है कि वह अपना अतिरिक्त द्रव्य इंग्लैंड भेज देती है और वहां उसे सोने के रूप में रखती है। इस नीति का तात्पर्य यही है कि द्रव्य के प्र-

चलन प्रवाह में भारत सचिव की गति स्थिर रह सके और वे कुछ
ब्याज भी कमा सकें साथही भारतसरकार के अनुकूल द्रव्य परि
वर्तन का अवसर भी दे सकें। इन्हीं बातों के आधार पर कमी
शन ने लिखा है —"अतएव इन वर्षों में सरकार ने जो मार्ग
ग्रहण किया है हम उसमें कोई दोष नहीं देखते, क्योंकि भारत
के लिये ऋण सम्बन्धी जो शर्तें थीं उनकी ऐसे ऋणों के प्रति बहुत
कम आवश्यकता थी।" किन्तु इन रोकड़ बाकियों का निरीक्षण
करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि इनका कारण अतिरिक्त
आय है। यदि यही कारण है तो इससे सिद्ध होता है कि अर्थ
सचिव ने अनुचित नीति का प्रयोग किया है अथवा अपना
हिसाब जमाने में उनने अनुचित सावधानता से काम लिया है।
यद्यपि सावधानी एक अर्थ सचिव को बहुत ही आवश्यक है तथापि
उसकी अतिशयता अनुचित है। १९-१४ १५ की कमी को
निकाल कर १५ वर्ष से अधिक की अतिरिक्त आय जो
३०० ७५ लाख पौंड होती है, यह सिद्ध करती है कि लोगों
से आवश्यकता से अधिक लिया गया है। यदि इस अतिरिक्त
आय से फिर भविष्य में बोझा न डाला जाता अथवा प्रस्तुत
मालगुजारी में कमी कर दी जाती तब भी उचित था, किन्तु
भारत सरकार ने इन दो में से एक भी बात नहीं की है अतएव
जनता के साधनों का यह दुरुपयोग अथवा अनुचित नाश करना
ही है। कमिश्नरों ने तो यही समझ लिया है कि इस अतिरिक्त
आयको उपर्युक्त दोनों बातों को पूरा करने की अपेक्षा इग्लैंड
ही भेज देना चाहिये। वे ऋण घटा देने की सम्भावना की निन्दा

करते हैं। यदि यह मान भी लें कि जो अतिरिक्त आय का रुपया लदन भेजा जाता है उससे ये दोनों बातें पूरी भी की जायें तो भारत सचिव के हाथ में २ प्रति सैकडा के हिसाब से ही रोकड बाकी रख भारत सरकार के लिये ३½ प्रति सैकडा की दर से ऋण लेने के कार्य के विषय में हम क्या कहेंगे?

इंग्लैड में जो ऋण लिया गया उसकी सूची।

वर्ष	नया ऋण	रोकड बाकी इग्लैंड में
१८९९—१९००	६,५००	३,३३१
१९००—०१	१४,४२२	४,०९२
१९०१—०२	६,००९	६,६९३
१९०२—०३	५,०००	५,७६८
१९०३—०४	३,५००	७,२९५
१९०४—०५	३,०००	१०,२६३
१९०५—०६	१४,४८०	८,४३७
१९०७—०८	२,०००	५,६०७
१९०८—०९	१० ७७७	५,७३८
१९०९—१०	११,३४२	८,४५४
१९१०—११	१५,०६९	१५,८१०
१९११—१२	१३,८७८	१८,१७४
१९१२—१३	७,३५५	१९,४६४
१९१३—१४	३,०००	११ ४१९
१९१४—१५	१४,७१५	१२,४७७
		९,१६३

इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष इस अधिकता का होना मानो प्रे
सनेम से अधिक सख्यामें सिक्कोंका हटा लेना है, इसके फल स्वरु
द्रव्य के बाजार मे बड़ी खलबली मचती है । यह ठीक है कि विदे
हुण्डियों के भुगतान से भारत मे यह कमी पूरी करदी जाती
किन्तु इसके और अनेक कारण हैं जो द्रव्य के बाजार
कुछ बातों से भिन्न हैं। इग्लैंड में बैंक के भाव बढ़ जाने
अथवा भारत की उपज को अधिक दाम के लालच से रोक ले
आदि पर विदेशी हुण्डियों की आवश्यकता पड़ सकती है, कि
मालगुजारी की वसूलात तो यथा क्रम प्रचलित रहेगी । इस
अतिरिक्त जब भारत का माल बाहर भेज दिया जाता है तत्पश्चा
कहीं कौंन्सिल बिल की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु भारत
न खेत बोए जाते हैं तभी स द्रव्य की अधिक आवश्यकत
पड़ती है। इस सम्बन्ध मे इग्लैंड में रोकड बाकी के रुपये मे अ
रखने का समर्थन नही किया जा सकता । हम यह नहीं क
सकते कि इग्लैंड मे रोकड बाकी रहे ही नही, क्योंकि जब त
हम होमचार्ज की तरह धन लेते रहेंगे तब तक हमें इग्लैंड को
द्रव्य भेजना ही पड़ेगा और उसका कुछ न कुछ अंश भारत
सचिव के पास बच रहना सम्भव ही है। हम यह अवश्य कहेंगे
कि (१) अर्थ सचिव ५००,००० पौंड से अधिक का—यद्यपि
यह भी अधिक है—बजट बनाना छोड़ दें, (२) यदि ५०००,००
पौंड से अधिक का बजट होजाय तो सबसे पहल टैक्स की कमी की
ओर ध्यान देना चाहिये [३] यदि यह न होसके तो कम से कम

उसके आधे भाग से तो नये ऋण की अधिकता को रोक देनी चाहिये (४) यदि इन बातों मे से एक भी न हो सके तो कम से कम सार्वजनिक ऋण को तो कम करना चाहिये, जिसमें भारतीय रुपये के ऋण पर पहले ध्यान दिया जाये ताकि द्रव्य के बाजार की दशा का सुधार हो और साथही इस देश में भारत सरकार की साख भी बढ़े, [५] तात्पर्य यह कि किसी दशा में भी ५,०००,००० पौंड से अधिक कदापि न होने चाहिये, जो भारत सचिव के पास रोकड़ बाकी के रूप मे रहे ।

३ तीसरी बात जो भारतीय करन्सी पद्धति से सम्बन्ध रखती है वह है विदेशी हुन्डियों के विक्रय से सम्बन्ध । जैसा कि पूर्व मे लिख चुके हैं कि समस्त पद्धति जिस आधार पर काम कर रही है वह कौन्सिल बिल ही है। इसका मुख्य कार्य रुपये का मूल्य १ शि० ४३/३२ पें० स्थिर रखना है जो लदनमें १ शि० ४ पें० में बेंचा जाता है और जो भारतमें अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर १ शि० ३२९/३२ पें० के हिसाब से बेंचा जाता है । इनसे भारत के अतिरिक्त आप को लन्दन मे सोने के रूप में परिवर्तित कर देने में सहायता मिली है साथ ही वहां से भारत में सोना न आने देने मे भी सहायता मिली है। १९१३ के कमीशन ने इन बातों को स्वीकार करते हुये इन बिलों को अनावश्यक बतलाया है और उनके विक्रय परिमाण को परिमित करने का निश्चय किया है साथ ही उनके

अधिक बेंचे जाने का कारण व्यापारिक बाहुल्य बतलाया गया है अतएव उसने उनके परिमित करने का निश्चय छोड़ दिया।

विदेशी हुण्डियों के विक्रय परिमाण तथा होमचार्ज के परिणाम की सूची।

वर्ष	०•० घटाकर वेदेशी हुण्डियों का विक्रय कौन्सिल बिल)	होम चार्ज घटाकर	फी रुपया-पनी के हिसाब से औसत दर
	पौंड	पौंड	पौंड
८९९—१९००	१९,०६९	१६,१८९	१६ ०६७
१९००—०१	१३,३००	१६,९८२	१५ ९७२
१९०१—०२	१८,५३९	१६,८७७	१५ ९८७
१९०२—०३	१८,४९९	१७,६६७	१६ ००२
१९०३—०४	२३,८५९	१७,३९९	१६ ०४९
१९०४—०५	२४,४२५	१८,८२७	१६ ०४५
१९०५—०६	१,५६६३	१७,६६६	१६ ०४२
१९०६—०७	३३,४३२	१८,३३३	१६ ०८४
१९०७—०८	१५,३०७	१७,७६८	१६ ०२९
१९०८—०९	१३,९१५	१८,३२३	१५ ९६४
१९०९—१०	२७,४१६	१८,४११	१६ ०४१
१९१०—११	२६,४६३	१८,००३	१६ ०६०
१९११—१२	२७,०५८	१८,३३३	१६ ०८३
१९१२—१३	२५,७५९	१८,९८६	१६ ०५८
१९१३—१४	३१,२००	१९,४५५	१६ ०७०
१९१४—१५	७,७४८	१९,५२५	१६ ००४

(अ) अनिश्चित परिमाण में कौंसिल ड्राफ्ट बेचने के कारण ही भारत में सोना आने में रुकावट होती है। यद्यपि यह ठीक है कि भारत में सोना आने देने से सरकार को प्रति दस लाख पौंड १५ ००० पौंड की हानि होती है, और अनिश्चित परिमाण में हुन्डी बेचने से आवश्यकता से अधिक एक करोड़ या इससे अधिक पौंड प्रति वर्ष सरकार भेजती है, जिसमें उसे प्रति वर्ष १५०,००० पौंड की प्रति वर्ष हानि होती है। किन्तु यह बात भ्रमपूर्ण विचार पर स्थित है। सरकार मालगुजारी के प्रत्येक वर्ष के प्रारंभ में यह जानती है कि उसे इतना धन होम-चार्ज के लिये इग्लैंड भेजना है। इसी के परिमाण के अनुसार बिल बेंचे जाने चाहियें। इसके अतिरिक्त यह सम्भव है कि सरकार को इग्लैंड में स्टोर खरीदने और रुपये ढालने के लिये तथा चांदी खरीदने के लिये सोने की आवश्यकता पड़े। किन्तु स्टोर खरीदने के लिये पहले ही बजट बन जाता है और वह वार्षिक बजट के साथ होम चार्ज की तरह भेजा जाता है। रही चांदी खरीदने की बात सो वह अनिश्चित है। इसका उपाय रुपये का और भी अधिक विचारयुक्त वैज्ञानिक पद्धति से ढालना है। हम इस सम्बन्ध में सरकार की नीति का अवलोकन करेंगे। यह कह देना ही पर्याप्त है कि यदि सिक्के बनाने की आवश्यकता पहले ही प्रकट हो जाये तो बजट में ही चांदी खरीद लेने का उपाय किया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि सरकार की

आवश्यकता को इस प्रकार प्रकट कर देना अनीतिक होगा। किन्तु सरकार चादी को वर्ष भर मे चाहे जब ले सकती है और व्यापारी सरकार के चादी खरीदने की आशा से वर्ष भर तक मूल्य स्थिर नहीं रख सकते। इसके सिवा सरकार को प्रति वर्ष रुपये ढालने की आवश्यकता नहीं। जितने ही अधिक काल में चादी का क्रय होगा उतनी ही कम व्यापार से होने वाली हानि होगी। किन्तु भारत सरकार का इग्लैंड मे अनीश्चित परिमाण में सोना रखने के लिये एक उत्तर दिया जा सकता है और वह यही है कि चाँदी के सिक्के वनाना विल्कुल बद कर दिये जाये। हम अन्यत्र इसकी प्रणालियों का विचार करेंगे जिससे करन्सी पद्धति में विशेष फेरफार न हो। यहा तो इसी से सतोष करलेना चाहिये कि यदि ऐसा हुआ तो इससे एक अत्यन्त अनिश्चित बात का निर्णय हो जायेगा (ब) अनिश्चित परिमाण में कौन्सिल बिल बेंचने का एक दूसरा कारण बताया जाता है कि भारत में आर्थिक अवस्था की नाजुक दशा के कारण तथा भारत के प्रति व्यापार का रुपया बाकी रहने से सरकार को स्थानीय सिक्के की एक्सचेन्ज (विनिमय) की दर में, भारत में सोने के अभाव या कमी के कारण, कठिनता पड़ सकती है। यह बात सब ने स्वीकार करली है कि यह भारत में सोने के साधनों की ही कमी थी कि १९०७–८ मे सरकार को सोने का निर्यात रोकना पडा। नीति के अनुसार निश्चित दर मे रुपये के बदले में सोना देने के लिये सरकार बाध्य नहीं है। अतएव ऐसे अवसरों में भारत में

सोने का प्रचलन सर्वथा सरकार के अधीन रहता है। यदि उस सुविधा से सोने का बचन रहित प्रचलन नहीं हो सकता तो रुपये की कीमत गिरने लगती है, और तब रुपये के रूप में चांदी की असली कीमत उसे रोक देती है। यदि कभी ऐसा हो तो इस पद्धति के प्रस्थापकों और प्रबन्धकों के सब विचार निर्मूल हो जायेंगे। यह आशा करनी चाहिये कि १६०७–८ की घटनाओं के उपदेश शीघ्र ही न भुला दिये जायेंगे, और भारत को प्रतिकूल एक्सचेंज (विनिमय) का भाव देखते ही सरकार १६०७–८ की तरह निश्चित दर में लंदन पर स्टार्लिंगड्राफ्ट, जिनकी दर १ शि० ३$\frac{29}{32}$ पे० प्रति रुपये से कम न होगी, बेंचने का प्रबन्ध करेगी। यह होने पर भी यदि भारत मे बाहर भेजने लायक सोना होता तो भारत सरकार की दशा ठीक रहती, साख बढ़ी चढ़ी रहती और भारतीय हुंडी का बाजार भी ठीक रहता। सिर्फ सोने के फंड की बात और स्वतन्त्रता से सोना भेजने की सरकारी आज्ञा मात्र ही बहुत काम कर देती. जिससे साधारण गड़ बड़ न हो पाती। किन्तु यदि सरकार को अधिक गंभीरता से काम करने की आवश्यकता पड़ती तो फिर अपने कथनानुसार आज्ञा का परिपालन करना भी उसका कर्तव्य होता और भेजने वाले आराम से सोना बाहर भेज सकते थे। ऐसा करने में उन्हें १ करोड़ पौंड के सोने की कमी पड़ती जिसे वे दो वर्ष में फिर एकत्र कर सकते थे। यह कहा गया है कि

इस कार्य मे सरकार ८० ००० से १००००० पौंड तक की हानि होती, किन्तु यदि ऐसा होता भी तो वह दस वर्ष में एक बार। और यदि प्रतिवर्ष ८००० से १०००० के व्यय से सरकार सराफे में अपनी साख बढा लेती तो वह व्यय सहज ही में अच्छी तरह पूरा किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त ऐसे अवसर के इस व्यय को हानि नहीं कहना चाहिये, वह तो इस परिमाण तक लाभ का अभाव मात्र है।

इस सम्बन्ध में हम अपने विचारों को सक्षेप मे यो लिख सकते हैं [१] लंदन में कौन्सिल ड्राफ्ट का अनिश्चित परिमाण मे बेचा जाना भारत के लिये अहितकर है जिससे थोड़े से लाभ के कारण भारत में सोने का आना बद कर दिया जाता है। होमचार्ज का परिमाण तक अन्य ऐसे कितने ही व्यय इस बात को सिद्ध करते है कि कौन्सिल बिलो का परिमित विक्रय होना चाहिये। १० प्रति सैकड़ा सहसा आपत्तिके निर्वारनार्थ ऊपर की रकम में दिये जा सकते हैं यदि चादी के सिक्के बनाने की कोई अच्छी सी स्कीम बनायी जाये तो चादी के खरीदने का प्रश्न जो सर्वथा अनिश्चित है इन डाफ्टों के परिमित होने की आवश्यकता को मिथ्या नहीं कर सकता। और यदि रुपये का बनाना बद ही कर दिया जाय तो फिर बात ही दूसरी हो जायगी।

४. कौन्सिल ड्राफ्ट के उपरान्त भारत में रुपये ढालने का प्रश्न विचारणीय है। सन् १८९३ में जनता के लिये टकसाले

बद कर देने के पश्चात् सन् १६०० में प्रथम बार उचित रीति से सिक्के बनाने की ओर ध्यान दिया गया । फिर अगले ५ वर्षों में रुपये की मांग बढ़ती ही गयी और कार्य भी बराबर जारी रहा । जुलाई १६०५ में सरकारी कोष मे १२, २५०,००० पौंड मूल्य के चादी के सिक्के थे । किन्तु दूसरे महिने में सिक्का सम्बन्धी कार्य में यह सब धन व्यय होगया । दिसम्बर १६०५ में की ईंटों का कोष लुप्त होगया और रुपयों का कोष ७ ६१ करोड़ ही रह गया । इसके अतिरिक्त लदन में कौन्सिल की मांग सदा की तरह बढ़ती रहने के कारण नये सिक्के ढालना अत्यावश्यक था । अत सरकार ने तेजी में चादी खरीदना शुरू कर दिया । किन्तु इस नई चादी के सिक्के बनाने मे समय की आवश्यकता थी इधर भारत सचिव ने तार द्वारा हस्तातरित कराने का भाव बढ़ाकर १ शि० ४ ५/३२ पेंस कर दिया । नये सिक्के बहुत अधिक सख्या में बने थे वे आवश्यकता से कहीं अधिक थे अत यह बला तो टल गई और कठिनता भी मिट गई । किन्तु इस वर्ष के अनुभव से भारत सरकार को यह तो विदित होगया कि उसके रुपये की बहुत अधिक मांग है अत अब से उसने बृहद् परिमाण में ढालना प्रारंभ किया । अधिकारी-गण यह तो करने लगे पर वे यह भूल गये कि जब व्यापार तथा जनता की वैभव वृद्धि में अधिक करन्सी की आवश्यकता होती है वहीं घटती में वह अधिक करन्सी फिर कोष में लौट आयेगी । वे यह भूल गये कि अधिक सिक्के बनाने का प्रभाव सचय

शील है। गत अनुभव के उपदेशों को वे भूल गये जब कि रुपये का मूल्य चांदी के बराबर था जब उसका संचय करना अथवा गलाना अधिक लाभप्रद था और लगातार अधिक सिक्के बनाने के बाद दूसरे ही वर्ष उन्हें रोकने की आवश्यकता पड़ती थी। इस दशा में बहुत शीघ्र रोकने की आवश्यकता पड़ी। सन् १९०७-८ की घटनाओं का हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं जब कि रुपये के एक्सचेंज का भाव गिर गया था। रुपये प्रचलन से हटा लिये गये थे और जितनी शीघ्रता से परिवर्तन मे सरकार सोना दे सकती थी उससे कहीं अधिक शीघ्रता से कोष मे रुपये आने लगे। दिसम्बर मास तक यही सख्या १५.४ करोड़ हो गई। नवम्बर १९०८ तक एक दूसरी १३ करोड़ की सख्या मे रुपये हटा लिये गये। अर्थात् कुल मिला कर प्रचलन के सिक्कों मे २८.५ करोड़ रुपयों अर्थात् १९,०००,००० पौंड की कमी हो गई। उस समय से भारत क्रमश अभिवृद्धि की ओर बढता गया और युद्ध समाप्त होने तक बराबर अपना व्यापार बढाता गया। और क्योंकि सन् १९०८ के अनुभव से सरकार ने आवश्यकता पड़ने पर ही रुपया ढालने की नीति सीख ली थी अत उस समय से कोई भय की बात नहीं हुई। किन्तु यह सब लिखना व्यर्थ होगा यदि यह न बता दिया जाय कि रुपया बनाने का नीति पहले से ही उचित आलोचना के लिये मुक्त रही है। निम्न-लिखित अकों से प्रति वर्ष बनने वाले रुपयों की सख्या प्रगट,

होगी साथ ही प्रति वर्ष नये सिक्के ढालने के सम्बन्ध के नये नियम के विषय में भी इससे अच्छी सहायता मिलेगी ।

सन् १८३५ से भारतीय टकसालों में बनाये गये कुल रुपयों की संख्या ।

	(००० छोड़ दिये हैं)			(००० छोड़ दिये हैं)
१८३५	१६,३९,७८	१८९२		१०,४६,५५
१८४०	३१,१६,७०	१८९३	(क)	७,८७,३०
१८४०	७६,६५,६०	१८९७	(ख)	१५,२४
१८६२	७०,६९,१२	१८९८	(ख)	७५,१९
१८७४	४,३५,२२	१९००	(ग)	११,८१,३९
१८७५	३,०९,९१	१९०१	(घ)	१०९१,३५
१८७६	४,०९,५०	१९०२	(ङ)	९,३१,३९
१८७७	१३,४८,०६	१९०३		२५
१८७८	९,६५,८५	१९०३	(च)	१०,२३,४७
१८७९	८,८७,२८	१९०४	(छ)	१६,०२,७८
१८८०	२,२१,८५	१९०५	(ज)	१२,७४,६०
१८८१	५५,९७	१९०६	(झ)	२६,३७.५०
१८८२	७,१४,८७	१९०७	(ट)	२५,२२,४९
१८८३	२,३१,४६	१९०८		३,०९,३२
१८८४	४,८४,८८	१९०९	(ठ)	२,२२ ९७
१८८५	९,९०,३०	१९१०		१,७६,८८

१८८६	५,२०,२४	१९१०		५८,२
१८८७	८.८६,००	१९११		९४,४
१८८८	७ ०७,६८	१९१२	(ड)	१२,४१,३
१८८९	७,४६,६८	१९१३	(ढ)	१६,३२,६
१८९०	११,७६,४१	१९१४		४,८३,७
१८९१	६,४१,६९	१९१५		१,५२,७

(क) इसमें बीकानेर राज्य के ५९० हजार रुपये सम्मिलित है

(ख) काश्मीर और भूपाल के पुन सिक्के ढालने के कारण

(ग) देशीराज्यों के २,०९,०२ रुपये सम्मिलित है।

(घ) ,, १,९०,४३ ,, ,,

(ङ) ,, २,९८,८६ ,, ,,

(च) ,, ११,६६ ,, ,,

(छ) , ५,९४ ,, ,,

(ज) ,, ३,२८ ,, ,,

(झ) देशी राज्यों के लिय ३,९० हजार रुपये सोने व चांदी के कोष में से ढाले गये (कलकत्ता ३२ लाख बम्बई १३५ लाल)

(ट) देशी राज्यों के लिये ९४ हजार रुपये तथा ४३३ लाख (गोल्ड स्टेंडंड रिजर्व सिलवर) से बनाये गये।

(ठ) देशी राज्यों के लिये १,०१ हजार रुपये बनाये गये।

(ड) ,, ,, १६,५६ ,, ,,

(ढ) ,, ,, १२,७३ , ,,

नये रुपयों की खपत के लिये देश की वास्तविक योग्यता का विचार किये बिना ही और अपने स्वत अनुभव का विचार किये बिना ही सन् १९०५-६ में सरकार ने रुपये बनाये और इस प्रकार पौंड-कोष रिक्त करदिया। यद्यपि व्यापार की अभिवृद्धि के समय रुपये न बनाने के कारण व्यापारियों को कुछ काल के लिये कठिनता अवश्य उत्पन्न होगी तथापि यदि असुविधा अधिक बढ़ जाये और घोर आवश्यकता ही आ पड़े तो सरकार चाहे जब चादी मोल ले सकती है और उसके रुपये ढलवा सकती है, क्यों कि भारतीय टकसालें एक दिन में १३ लाख रुपये बना सकती हैं। यद्यपि यह ठीक है कि यकायक बाजार से यों चांदी खरीदने में सरकार को ज्यादा क़ीमत देनी पड़ेगी, तथापि सिक्के बनाने की इस जिम्मेदारी के आगे यह हानि कुछ नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक नहीं है कि ऐन वक्त पर ही सरकार चादी खरीदे, क्यों कि वह तो व्यवहार के लिये जरा दूर-दर्शिता से काम लेने पर पहले ही रुपये बनाने की आवश्यकता जान लेती है। और यदि इसका अनुमान करना असम्भव हो तो हमें दो खराबियों मे से एक चुनना पड़ेगी। एक तो रुपये के अभाव में व्यापारियों की असुविधा और दूसरे पौंड—कोषों का रिक्त होजाना। यहा वह देखना जरूरी है कि जब चुनने की अनिवार्य आवश्यकता आजाये तो कौनसी बात चुनना चाहिये। अत इस सम्बन्ध में हम अपने विचार यों संक्षेप में प्रकट कर सकते हैं —

[अ] सिक्के बनाने की फ्राम देशीय पद्धति को स्वीकार करना भारत सरकार के लिये अच्छा होगा। किन्तु भारत में सोने के सिक्के आवश्यकता पर पूर्ण विचार किये बिना यह विषय समझाना नहीं जा सकता। अतएव किसी अन्य परिच्छेद मे इस सबन्ध पर विचार करने के लिये हम इसे यहीं छोड़ देते है। [ब] यदि रुपये का ढालना अनिवार्य हो तो गतकाल मे रुपये की खपत के अनुभवपर स्थिति एक भलाभाति सोची गई प्रणाली के आधार पर ही रुपयों का निर्माण होना चाहिये।

वर्तमान पद्धति की जिन कारणो मे कड़ी आलोचना की जाती है, उन्ही मे से एक 'स्वर्णकोष' भी है। यह विषय तीन भागों में विभक्ति किया जा सकता है यथा [अ] कोष का उद्देश्य और उसकी प्रकृति [ब] उसका सगठन और परिमाण [स] स्थापना।

(अ) इसके उद्देश्य और प्रकृति के सम्बन्ध मे विचार करते हुए फौलर कमीशन ने यह निर्णय किया था कि चांदी के सिक्को के लाभ से इसकी प्रस्थापना की जाये, जो सोने के रूप में कोष में हो। और जब वह किसी परिमाण मे हो जाये तो भारत मे सोने के सिक्के चलाने के काम में आये। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट के ५१ वें पैरा में लिखा है, "हमारी समझ से यद्यपि भारत सरकार को रुपये के परिवर्तन मे सोना देने के लिये नियम बद्ध न होना चाहिये और वह भी केवल स्थानीय कार्यों में, तथापि हम स्वर्ण कोष का यह मुख्य उपयोग मानते है कि जब कभी एक्सचेंज की दर निश्चित दर से घट जाये तब विदेश में भेजने

के लिये अवश्य उनका उपयोग है साथ ही जब कभी बहुत ही आवश्यकता आ पड़े अथवा समय पर उनका उपयोग आवश्यक हो, जब तक उसके कोष में सोना यथेष्ट परिमाण में सम्रहीत है और जब तक कोष से सोना लभ्य है तब तक सरकार भारत में रुपये के स्थान में सोना ही दे। उस सिफारिश तथा भारत में पौंड को प्रचलन का सिक्का बना देनी की सलाह से यह समझ लेना असम्भव है कि उससे भारत में सोने के सिक्के का उपयोग मेटने योग्य है। यद्यपि १८९८ की कमेटी ने यह प्रकट कर दिया था कि रुपया आगामी कुछ वर्षों के लिये, अपरिमित-प्रचलन-मुद्रा रहे, तथापि फाउलर कमेटी की रिपोर्ट में उसकी सिफारिशों को पढ़कर यह मतलब नहीं निकाल सकते कि उसने स्वर्ण कोष की प्रस्थापना केवल सोने के रूप में रुपये के परिवर्तन मूल्य की संरक्षता के लिये ही की है। भारत सरकार की नीति आगे चलकर स्पष्ट हो गई कि इन स्वर्ण कोषों का उद्देश्य भारत में सोने का सिक्का चलने का कदापि नहीं है। तिस पर भी १९१३ के चेम्बरलेन कमीशन ने तो उस पर अपनी विवेचना द्वारा और भी पक्की मुहर लगा दी। "सन् १९०७–८ के अनुभव से यह बात स्पष्ट होगई है कि कोष की आवश्यकता एक्सचेंज का भाव प्रतिकूल होने से विदेशी हुंडी के स्वछन्दता से न बेंच सकने पर न केवल होमचार्ज देने ही के लिये है प्रत्युत् व्यापार के अनुपयोगी अवशेष का भुगतान कर देने के लिये भी है, जिससे एक्सचेंज का भाव नियत दर में

न घट जाये। इसके विरुद्ध भारत में रुपये सावरिन के रूप मे बदल देने के अभिप्राय से इस कोष की आवश्यकता नहीं है। सोना सारे ससार का द्रव्य है और भारत मे भी और देशों के समान जब व्यापार का वसूल बाहरी के बकाये को चुकाने के लिये आन्तिरिक किंवा स्थानीय प्रचलन से कहीं अधिक सोने की आवश्यकता है।" किन्तु यहा हमें सिद्धान्त विरोध देख पड़ता है। जो लोग कोष को इसलिये आवश्यक समझते हैं कि उससे भारत में सोने का प्रचार होगा वे लोग उन लोगों के मत की कदापि प्रशसा नहीं करते जो उन्हे केवल ऐक्सचेञ्ज को स्थिर करने के लिये ही बतलाते हैं। दूसरी श्रेणी के लोग तो यह समझते हैं कि अन्तरिक कार्यों में सोने के सिक्के की कोई आवश्यकता नहीं, पर प्रथम श्रेणी के लोग इस कारण उसे उचित बतलाते हैं कि एक्सचेञ्ज को स्थिर करने का एक सोना ही मात्र उपाय है। अस्तु,

अब दूसरी बात उनके सगठन और द्रव्य परिमाण के के विषय में है अन यह कहना व्यर्थ है कि जिस उद्देश्य से उसकी स्थापना हुई है उसी के अनुकूल, ये दोनों बातें भी होनी चाहियें। किन्तु उसके उद्देश्य को ध्यान मे लाते हुये जब ध्यान में आता है कि रुपये की एक्सचेञ्ज कीमत स्थिर रखने के लिये उनकी स्थापना हुई तब तो कोष का कार्य स्पष्ट ही आलोचनीय है। जैसा कि पूर्व में लिख आये हैं इन कोषों का प्रारभ सन् १९०० से हुआ। आगे के वर्षों में उनकी उन्नति और स्थिति निम्न लिखित अकों से विदित होगी —

स्वर्ण कोष की परिमाण, रचना और स्थापना क्रम द्योतक अंक।

तिथि	इंगलैंड में (सहस्त्रों पौंड में)				भारत में (सहस्त्रों पौंड में)				सहस्त्रों पौंड में
३१ मार्च	बाजार भाव से जमानत	शीघ्र ही नगद मिलने वाला	बैंक में सोना	कुल	नगद और बुक क्रेडिट	सोना	चांदी	कुल	सब मिलाकर
	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड
१९०१					१,८३०	१ २००		३,००३	३,०३०
१९०२	३ ४५६			३,४५६					३,४५६
१९०३	३,६५२			३,६५२	१			१	३,६५३
१९०४	६,०४१			६,०४१	१६७			१६७	६ २०८
१९०५	८ ३८७			८,३८७	१५२			१५२	८,५३९
१९०६	१२,१२२			१२,१२२	२८६			२८६	१२,४०८
१९०७	११ ९६०			११,९६०	३०१	२१	४,०००	४,३२३	१६,२८३
१९०८	१२,९७८	१,१३१		१८ ११०			४,०००	४,०००	१८,११०
१९०९	७ १३३	४६९		७,६०३			१०,५८६	१०,५८६	१८ १९०
१९१०	१२,६९५	३,०१०		१५,७०६			२ ५३४	२,५३४	१८ २४०
१९११	१५,४०७	१,४७७		१६,८८५			१,९३४	१,९३४	१८ ८१९
१९१२	१६,०८७	१ ०७३		१७,१६१			१,९३४	१,९६४	१९,०२५
१९१३	१५०,६४५	१ ००५	१ ६२०	१८,५७१			४,०००	४,०००	२२,५१५
१९१४	१३,३००	९०७	२,३००	१६,५७७	३,०२५	६,२३३		९,२५८	२५'८३६
१९१५	१२,१४८	८	१,२५०	१३,४०६	७,०६१	५,२३८		१२,३०७	२५,६१३
१९१६	१६,२१८	५,७९२		२३ ०१०	४ ००१	२३८		४,२३९	२७,२४९

१९०७–८ में इसका परिमाण १८० लाख होगया था। इस समय यह निश्चित हुआ था कि सिक्कों पर जो मुनाफा हो उसका कुछ अंश रेल बनाने के लिए व्यय किया जाये, किन्तु अन्त मे यह विचार परित्याग कर दिया गया और धन स्वर्ण कोष मे सञ्चय होता गया।

बाजार भाव पर पौंडों की जमानतें	१७,७४५,५४३ पौंड
शीघ्र ही प्राप्त होने वाला द्रव्य तथा	
इंग्लैंड बैंक में सोना	४,३४४,९६२ पौंड
भारतीय शाखाओं मे चांदी	४,०००,००० पौंड
	२६,०९०,५०५ पौंड

दो करोड़ साठलाख पौंड से अधिक पूंजी में से ३/४ तो फैला हुआ था। नाजुक अवस्था में यह फैला हुआ द्रव्य बिना गहरे नुक्सान के वसूल नहीं हो सकता। अतः यदि हम इसे एक्सचेञ्ज का भाव स्थिर रखने वाला ही मानलें तो भी इसकी स्थिति बड़ी भय प्रद है। कोष का धन फैला देने का मतलब यही था कि उससे व्याज मिले। किन्तु जब अवसर पड़ने पर हानि उठानी पड़ती है तो सारे व्याज से कहीं अधिक होती है। उदाहरण के लिये सन् १९०७–८ की बात ही लीजिये। उस समय ८ ०००,००० पौंड की जमानतें बेंची गई थीं। पाँच वर्षों में उस पर ३ प्रति सैकड़े का व्याज मिलता अर्थात प्रति वर्ष २४०,००० या ५ वर्ष में १,२००,००० पौंड

मिलता। श्रीयुत् श्रीलखवीरी के मतानुसार सन् १९०७-८ मे जबरेने जमानतों के बेचे जाने का परिणाम यह हुआ कि २२ लाख रुपये या १५०,००० पौंड से अधिक की हानि हुई। सन् १९०२-३ से १९११-१२ की भारतीय नैतिक और भौतिक रिपोर्ट में लिखा है कि '३१ मार्च १९१२ तक धनविनियोग अथवा पूजी लगाने पर २,१०५ ८६८ का खालिस नफा था। २,९५८१३८ पौंड ब्याज और डिस्काउट-बट्टे के मिले थे और रक्षितधन ६७८,७०२ पौंड तक घट गया था और कुल हानि जो १५०,०८३ पौंड थी, जमानतों के बेचने आदि से वसूल करली गई थी। फुटकल खर्च में १०,४८० पौंड कूते गये थे।" ३१ मार्च सन् १९१६ के दिन १७,००७८३७ पौंड जमानतों की कीमत है लाख के हिसाब से कम हो गई थी, जिसका बाजार भाव उस तिथिपर १६,२९८ ६९२ पौंड कूता गया था। उस समय कीमत बहुत घटती गई। जनता के विश्वास पर इस कमी से बड़ा आघात पहुँचा। इस कोप का अच्छी २ से जमानतो पर भी धन विनिमय दोषार्द्ध है। चेम्बरलेन कमीशन ने लिखा था, "हमारा मत है कि स्वर्ण कोषों के ठीक २ सोने का परिमाण ५,०००,००० से कहीं अधिक है। वर्तमान स्थिति मे हमारी समझ से तो सबसे अच्छा नियम यही होगा कि जब कुल जमा २०,००० ००० पौंड से अधिक हो तो कम से कम आधा नकद सोना जरूर कोष मे रहने देना चाहिये और कम से कम १५,००० ००० पौंड यथा शीघ्र सचित कर लेने चाहिये।"

त बात से हमें कोष के परिमाण पर विचार करना पड़ता है।
न बातों द्वारा हम परिमाण का निश्चय कर सकते हैं यथा (१)
चलित सिक्के के परिवर्तन की आवश्यकताए (२) भारत की
पारिक आवश्यकतायें (३) होमचार्ज। पहले के विषय मे कहा
या है कि प्रचलन गत सब सिक्के और नोट आवश्यकता पडने
: सोने के रूप मे परिवर्तित हो सके तो स्वर्ण कोष का परि-
ण १२०,०००,००० पौंड से १५०,०००,००० पौंड तक
गा। यह हिसाब इस गलत खयाल पर लगाया गया है कि
दि परिवर्तन की आज्ञा हो जाये तो समस्त रुपये और नोट एक
र ही बदलने के लिये लाये जायेंगे। कम से कम थोड़ा बहुत
ागजी रुपया प्रचलन में जरूर रहेगा, क्योंकि अधिक परिमाण
देने के लिये सोना बहुत भारी है। दूसरे रुपयों का एक अधिक
श भी प्रचलन में रहेगा, क्योंकि भारत का साधारण लेन देन
तने थोडे परिमाण मे हुआ करता है कि उसके लिये सोने के
सक्को की आवश्यकता नहीं है। अत यदि परिवर्तन की आज्ञा
दी जाये तो भी एक तिहाई से अधिक नोट या रुपये परिवर्तन
 लिये न आयेंगे। इसलिये हमें कोष के लिये चार या पाँच
रोड से अधिक सोने की आवश्यकता नहीं। दूसरी ओर यदि
म हिन्दुस्तान के व्यापार के बकाया को जाच की तौर पर देखे तो
गत वर्षों में और आगामी पीढियों मे भी उसे इस ओर
नुकूलता थी और रहेगी। इसलिये केवल व्यापारिक हिसाब
 लिये कोष में स्वर्ण एकत्र करने की आवश्यकता नहीं। यदि

भारत को होमचार्ज न देना पडता तो खराब से खराब अकाल में भी भारत की आर्थिक दशा न गिर पाती। कुछ समय के लिये भले ही एक्सचेंज की प्रतिकूलता हो जाये, किन्तु उन्नति के प्रवाह में वह दूर हो जायेगी। यह केवल होमचार्ज के ही कारण है कि एक्सचेंज की समस्या हमारे लिये चिन्ता जनक बनाई है। इस आधार पर भी यदि अधिक से अधिक द्रव्य होमचार्ज के लिये आवश्यक है तो वह २०,०००,००० पौंड है। यदि हम यह मानलें—यद्यपि यह बिल्कुल असम्भव है—कि लगातार दो वर्षों तक व्यापारिक बकाया हमारे प्रतिकूल हो तो ऐसे समय में यह मानकर कि हमने इग्लेंड से कुछ ऋण नहीं लिया, हमें होमचार्ज के लिये ४ करोड़ पौंड देना पड़ेगे। अतएव कोष परिमाण ठीक २ रूप से ४०, ००० ००० से ५०, ०००, ००० ही है। ५ करोड पर ब्याज की हानि, २० लाख पौंड प्रति वर्ष होगी, पर एक्सचेंज की स्थिरता होने पर यह खर्च भली भाँति पूरा किया जा सकता है और हानि इस प्रकार कम की जा सकती है उसका एक तिहाई या आधा अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी जमानतों में लगाया जाय।

स्वर्ण कोष के सम्बन्ध में अन्तिम विचारणीय विषय है—कोष की स्थापना। जब से इसका प्रारम्भ हुआ है तब से वह इग्लैंड में ही रहा है। चेम्बरलेन कमीशन ने इस बात का इस प्रकार समर्थन किया है, "स्वर्ण कोष के लिये यदि कोई सब से अधिक उपयुक्त स्थान है तो वह निसन्देह लन्दन ही है।"

साथ ही वे यह कह कर इसका और भी समर्थन करते हैं कि "लंदन संसार का भुगतानगृह है, भारत का प्रधान ग्राहक यूनाइटेड किंगडम (इंग्लैंड, स्काटलैंड और आयर्लैंड) है, और लंदन ही वह स्थान है जहां भारत की ओर से भारत सचिव को व्यय के लिये और इस देश को भारत के व्यापारिक व्यय के लिये तथा सम्पूर्ण संसार को ऋण देने के लिये द्रव्य की आवश्यकता है। यदि भारत में कोष रखा जाय तो जहाज द्वारा उसे लंदन भेजना पड़ेगा। इससे जहां पर त्वरित कार्य की आवश्यकता है उसमें विलम्ब हो जायगा। अतएव हमें यह कहने मे जरा भी संकोच नहीं है कि सम्पूर्ण स्वर्ण कोष लंदन मे ही रखा जाना चाहिये।" यह सिफारिश भी गलत ख्याल पर स्थित है। (१) भारत में कोष के रखने से वह भारत की व्यापारिक जनता को नैतिक बल का साधन होगा। (२) लन्दन को जहाज द्वारा द्रव्य भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, यदि गत काल-लीन अनुभव पर विश्वास किया जा सकता हो। (३) इसके अतिरिक्त यदि कोष भारत मे रहेगा तो भारत सरकार सोने के रुप मे ही ऋण दे सकती है, जिससे ब्याज की दर घट जायगी (४) अन्त में यदि कोष भारत में रहेगा तो उसका जो कुछ धन पूंजी मे लगाया जायगा वह समय के रूप मे लगाया जायगा, जिससे भारत सरकार की साख बढ़ेगी। इन सब बातो से यह कभी नहीं कहा जा सकता भारत में स्वर्ण कोष नहीं रखा जा सकता प्रत्युत् इस सरकारी नीति की कड़ी आलोचना की जा सकती है।

सातवां प्रकरण

महायुद्ध और भारतीय मुद्रा।



अबतक हमने भारतीय मुद्रा प्रचलन की स्थापना, नीति परिस्थिति आदि का सक्षेप में वर्णन किया है किन्तु गत् महा युद्धका भारतीय करन्सी के प्रत्येक अंग पर विशेष प्रभाव पडा है। यहा हम प्रधानत. दो बातों पर विचार करेंगे। (१) कौन्सिल ड्राफ्ट या विदेशी हुण्डियों पर महायुद्ध का प्रभाव और (२) नोटों पर महायुद्ध का प्रभाव।

कौन्सिल ड्राफ्ट पर महायुद्ध का प्रभाव।

सन् १९१४ और १५ के बजट के अनुसार भारत मंत्री की हुण्डियों के लिये २ करोड़ की रकम स्वीकृत हुई पर उस वर्ष के पहले चार महिनो में व्यापारिक दशा के गिर जाने से हुण्डियों की माग बहुत कम थी जब राजनैतिक परिस्थिति बदल गई और युद्ध प्रारम्भ होगया तो व्यापार ढीला पडगया और भारत से विदेश पूजी खींची जाने लगी। भारतमन्त्री की हुण्डियों का भाव गिरगया। रुपये की स्टार्लिंग कीमत गिरने लगी और एक्सचेन्ज में और भी गडबड मच गई।

सरकार यद्यपि रुपयो के बदले में सावरेन देने के लिये बाध्य न थी और इसी से रुपये की एक्सचेंज कीमत गिर जाने के लिये भी बाध्य न थी तथापि उसने उस समय भी यह कहा कि १ शि० ३ ३/३२ पें० रखने के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति काम में लायेगी । इसके लिये सरकार ने चेम्बरलेन कमीशन की हिदायतों के मुआफिक काम शुरू किया । पहले तो उसने कम से कम १,००० पौंड एक साथ लेने वाले व्यक्तियों अथवा कारखानों को इतने पौंड देना बंद किया, इसके बाद उसने गैर सरकारी व्यक्तियों और पुरुषों को एक दम ही देना बंद कर दिया, जिससे स्वर्ण कोष अनुचित रूप से खाली न हो जाय । इसके उपरान्त उसने ३ पेंस की दर से कौंसिल ड्राफ्ट बेंचे जिनकी तादाद १० लाख पौंड प्रति सप्ताह थी इसके कुछ दिन बाद उसने तार द्वारा पौंडो के हस्तान्तरित पत्र बेंचने प्रारम्भ किये । इनकी दर १ शि० ३ पेंस थी । इस प्रकार इस वर्ष में ८० ७ लाख पौंड के ड्राफ्ट बेंचे गये । इसकी कुल रकम भारत के स्वर्ण मुद्रा कोष को दे दी गई और लंदन मे भारत सचिव द्वारा जमा किया गया द्रव्य उसी हिसाब मे ऋण मे लिख लिया गया । इस प्रकार उस वर्ष भारतसचिव ने ७०.७ लाख पौंड के ड्राफ्ट भारत पर बेचे, किन्तु उस पर किये गये रिवर्स ड्राफ्ट के कारण भारतसचिव को ८०.७ पौंड देने थे । यह अवश्य ही विचित्र बात थी क्योंकि इसी के कारण सरकार का ध्यान पोस्ट आफिस बैंकों की तरफ

गया और यह स्वर्णकोष से ७० लाख पौंड ऋण ले कर पूरा किया गया। भारतसचिव ने अपना व्यय इस प्रकार पूरा किया — (१) होम गवर्नमेन्ट से वार आफिस की तरफ से भारतसरकार द्वारा किये गये व्यय के ८० ७ लाख पौंड मिले। (२) ५० ६ लाख के स्थान पर १ ६ करोड पौंड उधार लिये गये (३) पेपर करेन्सी कोष से १० लाख पौंड नकद वाकी में बदल लिये।

सन् १९१५–१६ के बजट मे भारतसचिव के लिये ७० १ लाख पौंड स्वीकृत किये गये। यद्यपि प्रारम्भ में एक्स-चेंज की दशा ढीली व कमजोर थी और ४० ६ लाख पौंड के स्टार्लिंग ट्रान्सफर बेचे गये थे तथापि सितम्बर में दशा सुधर गई और शीतकाल में कौन्सिल ड्राफ्ट की माग बढ़ी, क्योंकि यद्यपि युद्ध होरहा था, तथापि नवीन आधारों पर व्यापार स्थापित हो गया था। चाय, चमडा और जूट का निर्यात अधिक था किन्तु मशीन, मूल्यवान धातु आदि का निर्यात कम था। इस प्रकार उस साल कौन्सिल ड्राफ्ट की बहुत माग थी और भारतसचिव ने उस वर्ष २ ४ करोड पौंड या अनुमान ३० करोड रुपये के ड्राफ्ट बेंचे। उतनी बडी रकम देने के अलावा भारत-सरकार को होम गवर्नमेन्ट की तरफ से अनुमान २३ करोड रुपये का व्यय करना था और साथही ९½ करोड रुपये के गेहू खरीदना थे। इतना बड़ी आवश्यकता को पूर्ण करने के अभि-प्राय से उनने इंग्लैंड के पेपर करेन्सी कोष के पूंजीगत द्रव्य

को बढाने का अधिकार प्राप्त किया, जिसके कारण भारत में १२॥ करोड रुपये इस प्रकार प्राप्त हो सके कि भारतसचिव ने उतना ही द्रव्य पौंडों के रूप मे अपनी नकद बाकी मे से पेपर करेन्सी से बदल दिया और उसे खजाने की हुण्डियोंमें लगा दिया। इसके अतिरिक्त स्वर्ण-मुद्रा-कोप से भारत मे नकदबाकी में १४½ करोड रुपये परिवर्तित कर दिये गये, इसमें भी भारतसचिव ने अपनी नकदबाकी से स्वर्ण-मुद्रा-कोप मे उतनी ही रकम भेजदी। इन बातों के अतिरिक्त सरकार ने गहरी तादाद मे चांदी के सिक्के ढाल कर और भी दशा सुधार ली। इस प्रकार १९-१५--१६ एक्सचेंज मे किसी प्रकार की गडबड किये बिना व्यतीत हो गये।

इसके उपरान्त दूसरे वर्ष में भारतसचिव के लिये ५०·१ लाख पौंड की रकम मजूर हुई, कारण यह था कि भारतसचिव को होम तथा आस्ट्रेलियन सरकार से १ करोड ८०·६ लाख की रकम मिलने की आशा थी। किन्तु कपास, खाल, बीज, गेहू आदि का निर्यात बढ जाने के कारण कौन्सिल ड्राफ्टों की इतनी ज्यादा माग हुई कि १ अप्रैल १९१६ से ४ दिसम्बर १९१६ तक भारत सचिव ने २ करोड पौंड के ड्राफ्ट बेंच दिये। इसके अतिरिक्त होम गवर्नमेन्ट की ओर से सरकार को अधिक व्यय उठाना था। मेसोपोटामिया, ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका और मिश्र में बहुत माल भेजा जाने के कारण करन्सी की दशा बिगड़ गई। ऐसी ऐसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सरकार ने पेपर करन्सी कोष

के पूजी मे लगाये गये द्रव्य को ओर बढ़ाया। साथ ही उसने इग्लैंड और हिन्दुस्तान दोनों ही जगहों मे रुपये ढालने के लिये चादी खरीदी।

इस प्रकार यह देखा गया कि जब तक हिन्दुस्तान मे कोष की रकम यथेष्ट नहीं होगी तब तक ड्राफ्ट की माग बढती ही रहेगी। इस कारण भारत सचिव ने यह नोटिस निकाला कि आगे किसी नोटिस के निकलने तक ड्राफ्ट का वेचना बद रहेगा। हा, बुधवार के दिन ८० लाख रुपये के टेंडर लिये जायेंगे और वह भी बिल के लिये १ शि० ४२⁄३ पे० के हिसाब से और तार द्वारा स्थानान्तर के लिये ४३⁄३ पे० के हिसाब से लिये जायेंगे इसके उपरान्त यह भी लिख दिया गया था कि किसी व्यक्ति या कारखाने को १० लाख रु० प्रति सप्ताह से अधिक की स्वीकृत न दी जायेगी।

इस विज्ञप्ति से बैंकिंग और व्यापारिक केन्द्रों में बड़ी हलचल मचगई, और, यद्यपि बुधवार को दिये गये टेंडरों से ज्यादा रकम के टेंडर भी लिये गये थे, तथापि इन बन्धनों से कई महत्व पूर्ण फल हुए। एक तो उनके द्वारा नराफे में एक मत हो गया। प्रधान एक्सचेंज बैंकों ने जब देखा कि वे अपने लदन के आफिसों में रकम न निकाल सकेंगे तो वे स्वच्छन्दता पूर्वक आगे न बढ़ सके। दूसरे उनसे बहुत सी हुडियों की दर गिर गई। तीसरे निर्यात पर गहरा प्रभाव पडा क्योंकि आर्थिक दशा हीन हो रही

थी और अन्त मे व्यापार साधारणतया इन्हीं बन्धनों को भोग रहा था।

इस परिस्थिति को सुधारने के लिये बहुत से उपाय बतलाये गये। उदाहरणार्थ एक ने यह प्रस्ताव किया कि पेपर करन्सी कोष का पूजी गत द्रव्य और बढा दिया जाये। नोटो का प्रचलन बढाने के लिये इस स्थिति के सुधारको ने एक और दो रुपये के नोटों के चलाने का प्रस्ताव किया, किन्तु ये नोट अधिक प्रचार पा सकने योग्य नहीं है। यही नहीं इससे रुपयो को निश्चित सीमा तक पहुचाने मे बहुत समय लगेगा। पॉच रुपये तक के नोटों ने सिर्फ २½ करोड रुपये कम किये। जब तक कि प्रचलित नोटों में अभि वृद्धि नही होती तब तक पेपर करन्सी कोप का पूजी का द्रव्य बढा देना उस कोप पर व्यर्थ का भार डालना है। अस्तु, अन्य कुछ उपाय इस प्रकार थे —

१ जापान और अमेरिका से सोने का आयात किया जाये।

२ भारत मे पेपर करन्सी कोप का सोना निकाल लिया जाये।

इनमे से पहली बात के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि इस आयात से एग्लों-जापानी और एग्लो अमेरिकन एक्सचेन्ज पर उलटा प्रभाव पड़ेगा। दूसरी ओर यह कहा जा सकता कि एक्सचेन्ज पर प्रतिकूल प्रभाव क्षुद्र होगा पर सोने के आयात पर बन्धन डालने से हानि अधिक होगी। जब से अमेरिका ने मित्रों

का साथ लिया है तब से ऐंग्लो अमेरिकन एक्सचेन्ज उतना चिन्ता जनक नहीं रहा। साथ ही इन स्थानों से सोना आने का प्रबन्ध किया गया है। हम इसी प्रकरण में अन्यत्र एक्सचेन्ज की स्थिति का जो यहा युद्ध के उपरान्त थी, वर्णन करेंगे।

दूसरा उपाय अधिक सभव जान पड़ता है, क्योंकि यदि पेपर करन्सी कोष का सोना निकाल लिया जाये तो उतना ही द्रव्य भारत सचिव ड्राफ्ट बेंच कर पूरा कर लेंगे। सोने के निकाल लेने से रुपये की खींच होगी और इस प्रकार से रुपयों के स्टाक में वृद्धि होगी।

२ महायुद्ध और नोट प्रचलन।

महायुद्ध का पहला धक्का हमारी नोट-प्रचलन-पद्धत्ति की गम्भीरता का परीक्षक था। महायुद्ध के प्रारम होने पर भारतीय व्यापार नष्ट होगया, मारवाडी दलाल रक्षा के लिये बहुत दूर राजपूताने में अपने २ घर भाग गये। भारत सरकार का लदन में देना वैसा ही बना रहा है पर इधर भारत का निर्यात कम हो चला। उसी समय पेपर करन्सी कोष और सेविंग बैंकों पर लोगों की धूम हुई। ऐसे समय में सरकार ने जनता के विश्वास को फिर से बढ़ाने के लिये बड़ी सावधानी से काम लिया। पहले तो उन्होंने स्वच्छन्दता पूर्वक सोना देने की

आज्ञा देदी पर जब यह ज्ञात हुआ कि कोष का अधिकांश सोना खाली विचार में पडे हुए व्यक्तियों द्वारा लिया गया और सरकार की साख का विश्वास चाहने वाले लोगों को नहीं मिलाया बहुत कम मिला तो सरकार ने, १० लाख पौंड इस प्रकार खो देने के बाद, प्राइवेट लोगों को सोना देना बिल्कुल बंद कर दिया। इसके उपरान्त लोग सेविंग बैंकों की ओर बढे। वे उनसे नकद द्रव्य लेना चाहते थे, पर क्योंकि सरकार ने लोगों की इस इच्छा की पूर्ति के लिये सभी आवश्यक सुविधाए कर दी इस कारण अवस्था कभी ज्यादा न बिगडने पाई। सेविंग बैंको में ७० लाख पौंड की कमी हुई जो स्वर्ण मुद्रा कोष से ऋण लेकर पूरी की गई। इधर तो नोट भुनाने का इस कदर जोर था उधर बम्बई, बर्मा और पंजाब में सन् १९१३ में बैंकों के फेल हो जाने से साख वैसे ही गिर रही थी। कुल नोट जो प्रचलन से हट गये ७ करोड़ रुपये के बराबर थे।

महायुद्ध के प्रत्येक वर्ष में, जैसा कि ऊपर लिख आये हैं, स्थानीय करन्सी की आवश्यकता बहुत बढने लगी। इस कारण नोटों का प्रचलन बढाया गया और १९१५ से पेपर करन्सी कोष का पूंजी गत द्रव्य धीरे २ बढाया गया। सरकार ने क्रम २ से अपनी इस शक्ति का प्रयोग किया। ३१ मार्च १९१७ में स्थिति इस प्रकार थी:—

		कोष	
कुल—प्रचलन गत द्रव्य	८६,३७,५१,७३५ रु०	चाँदी के सिक्के (भारत में)	१७,१०,७१,११८ रु०
कमी—विदेशों के केन्द्रों से प्रचलन से हटा लिया गया और हुण्डियाँ देने वाले केन्द्रों को दिया गया।		सोने के सिक्के और बुलियन (भारत में)	११,६६,११,६२२ रु०
		बम्बई और कलकत्ते में सिक्का ढालने के लिये चाँदी की ईंटें	१,६६,३२,७६७ रु०
		सोने के सिक्के, और (इंगलैंड में)	६,६७,५०,००० रु०
		चाँदी की बुलियन (इंगलैंड में)	१३,३६,७७२ रु०
		हुण्डिया (भारत)	९ ९९ ९९ १४६ रु०
		,, (इंगलैंड)	३८,४९,११,११५ रु०
		एक केन्द्र का दूसरे केन्द्र पर लेना या हुण्डियाँ	२,५०,००० रु०
	८६,३७,५१,७३५ रु०		८६,३७,५१,७३५

इसके उपरान्त दशा में किस प्रकार परिवर्तन हुआ और करेंसी और एक्सचेन्ज की कैसी स्थिति हुई, इसका वर्णन

हम करन्सी कमेटी की रिपोर्ट से करेंगे। इस सम्बन्ध में श्रीयुत् हालना जी ने तथा श्रीयुत् काले महाशय ने अपने कई लेख लिख कर भारतीय मुद्रा व्यवस्था और करन्सी कमेटी के विचारों पर अच्छा प्रकाश डाला है। हम इस स्थान पर यत्र तत्र, आवश्यकीय परिवर्तन कर धन्यवाद सहित उन्हीं लेखों को उद्धृत करते हैं। आशा इससे पाठकगण करन्सी की स्थिति का ठीक परिचय पा सकेंगे।

"करन्सी कमेटी की एक्सचेंज यानी विलायती हुण्डी के सम्बन्ध में मुख्य सिफारिश यह है कि विलायती हुण्डी का भाव कम से कम दो शिलिंग रहे। आजकल विलायती हुण्डी का सरकारी भाव २ शि० ११ पे० है। यानी पहले १) रु० जमा करने पर विलायत में १ शि० ४ पें० मिलता था पर अब एक रुपया जमा करने पर विलायत में २ शि० ११ पें० मिलेंगे। रुपये का मूल्य दूने से अधिक हो गया। विलायत की हुण्डी का इतना अधिक भाव कर देने का मुख्य कारण करन्सी कमेटी ने चांदी का बहुत अधिक दाम हो जाना बताया है। सन् १९१५ में लंदन में चांदी का ज्यादा से ज्यादा २७ पेनी फी औंस का भाव था, अप्रेल १९१६ में भाव बढ़कर ३५$\frac{1}{2}$ पेनी हो गया और दिसम्बर में ३७ पेनी हो गया। अगस्त १९ में चांदी का भाव ४३ पेंस हो गया। करन्सी कमेटी ने दिखाया है कि जिस समय चांदी का भाव ४१ पेनी था और एक्सचेंज का रेट १ शि० ४ पेनी था उस समय रुपये का मूल्य पूरा था, पर चांदी का

भाव ४१ पेनी से ऊपर हो जाने पर उसमें घाटा होने लगता था। ज्यादातर चांदी अमरीका में ही होती है। सितम्बर १९१७ में अमरीका गवर्नमेन्ट ने चांदी पर कन्ट्रोल कर लिया और बिना गवर्नमेन्ट की आज्ञा के चांदी बाहर नहीं जाती थी। इसका फल यह हुआ कि चांदी कुछ मंदी हो गई। अक्टूबर १९१७ और अप्रेल १९१८ के बीच में लंदन में चांदी का भाव ४१$\frac{5}{8}$ और ४९$\frac{1}{2}$ पेनी के बीच में रहा। मई १९१८ और अप्रेल १९१९ के बीच में लंदन में चांदी का भाव ४७$\frac{1}{2}$ पेनी से ५० पेनी तक रहा। अमरीकन गवर्नमेन्ट ने हमारी गवर्नमेन्ट को भी बहुत चांदी १०१॥ सेंट फी औन्स के हिसाब से दी। सेंट एक अमरीका का सिक्का है। दो सेन्ट के बराबर एक पेनी होती है। मई में यूनाइटेड स्टेट्स व ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने चांदी पर से कन्ट्रोल उठा लिया। करन्सी कमेटी कहती है कि उसका फल यह हुआ कि मई १९१९ में चांदी का भाव ५८ पेनी हो गया। उसके बाद चीन की चांदी की मांग ज्यादा बढ़ते रहने के कारण इसका भाव और तेज होता गया। १७ दिसम्बर को लंदन में चांदी का भाव ७८ पैनी था।

जैसे २ चांदी का भाव बढ़ता गया वैसे २ गवर्नमेन्ट एक्सचेंज का भाव बढ़ाती गई। नीचे दी हुई सूची से पता लगेगा कि किस प्रकार गवर्नमेन्टने कब २ एक्सचेंज का भाव बढ़ाया —

तारीख		भाव
३ जनवरी १९१७		१ शि० ४॥ पेंस
२८ अगस्त "	....	१ शि० ५ पेंस
१२ अप्रेल १९१८		१ शि० ६ पेंस
१३ मई १९१९	...	१ शि० ६ पेंस
१२ अगस्त "		१ शि० १० पेंस
१५ सितम्बर "	..	२ शि०
२२ नवम्बर "	..	२ शि० २ पेंस
१२ दिसम्बर "	.	२ शि० ४ पेंस

इस सूची से यह पता लगेगा कि एक्सचेंज का ज्यादा रेट सन् १९१९ के अन्तिम आधे भाग में ही बढ़ा है। कोई नहीं कह सकता है कि एक्सचेंज का भाव कहां जा कर ठहरेगा।

एक्सचेंज के इस भाव से भारतवर्ष को क्या नफा नुकसान होगा यह हम आगे चल कर बतावेंगे। यहां यह जान लेना आवश्यक है कि करेन्सी कमेटी ने एक्सचेंज का भाव बढ़ाने के अतिरिक्त मुख्य रूप से इन बातों की सम्मति दी है कि (१) इस समय जो रुपया चल रहा है उसका वजन वही रहे और उसमें चांदी भी उतनी ही लगती रहे जितनी लगती है (२) अब से रुपये का मूल्य पौंड के हिसाब से निश्चित न हो कर सोने के हिसाब से निश्चित रहना चाहिये और गिन्नी में लगे हुए सोने के दशांश हिस्से यानी ११३ ग्रेन सोने का दाम १) होना चाहिये

(३) गिन्नी की दाम १५) रु. की जगह १०) रु होना चाहिये और गवर्नमेन्ट को कानून बनाकर यह बात तै करनी चाहिये (४) जबतक कानून द्वारा गिन्नी १०) रु. की न होजाये तबतक विदेशों से सोने के आने जाने की रुकावटें जारी रहें और बम्बई में सोने की टकसाल खुलनी चाहिये और लोग जो सोना दें उसकी गिन्नी बना देनी चाहिये। (५) गवर्नमेन्ट की जो यह प्रतिज्ञा है कि गिन्नी के बदले में रुपये दिये जायेंगे यह आज्ञा वापिस ले ली जाये। (६) चांदी के विदेशों से आने जाने की रुकावट दूर कर दी जाये और चांदी पर जो टेक्स लगाया गया है वह दूर कर दिया जाये। भारत मन्त्री ने इन बातों पर भारत सरकार से सलाह कर इन बातों को स्वीकार कर लिया है। इनमें से कुछ बातो के करने की आज्ञा भी दे दी गई है। चांदी पर जो ।) औंस का टेक्स था वह हटा दिया गया और चांदी आने की रुकावटें दूर कर दी गई पर चांदी बाहर न जा सकेगी। इस बात की भी आज्ञा दे दी गई है कि बाहर से आने वाला सोना गवर्नमेंट एक गिन्नी के १०) रु० के हिसाब से ले लिया करेगी। उधर गवर्नमेन्ट सोना बेच २ कर भाव सस्ता कर देना चाहती है। जब भाव खूब सस्ता हो जायेगा तो हिन्दुस्तान मे १०) रु० में गिन्नी लेने देने का कानून बनेगा।* सरकार ने करन्सी कमेटी की सम्मति

---

* सरकार ने गिन्नी का भाव १० रु० घोषित कर दिया जिसका विवरण इसी प्रकरण में अन्यत्र दिया गया है।

के अनुसार गिन्नियो के बदले में रुपया देने की आज्ञा वापिस ले ली है। गवर्नमेन्ट ने यह भी आज्ञा दे दी है कि अब लोग सोने और चांदी के सिक्कों को सिक्कों के काम के अलावा और कामो मे भी ला सकते हैं।

इस कमेटी में श्री० दादी वा मरवान जी दलाल एक मात्र हिन्दुस्तानी मेम्बर थे। उनका मत कमेटी के अधिकाश मेम्बरों से नहीं मिलता है। उनके मत का खुलासा यह है कि —

(१) गिन्नी का दाम १५) रु० ही रहना चाहिये।

(२) लोगों को सोने या सोने का सिक्का बाहर से मगाने की पूरी स्वतन्त्रता दी जाय।

(३) इस समय जो रुपया जारी है वह वैसा ही कानूनी सिक्का जारी रहे। पर जब तक न्यूयार्क में चादी का भाव ९२ सेन्ट से ऊपर रहे तब तक यह रुपया ढालना मुलतवी रखा जाय।

(४) जब तक चादी का भाव तेज रहे उस समय तक सरकार २) रु० का एक नया सिक्का चलावे और उसमे चादी कम लगावे।

(५) गवर्नमेन्ट कम चादी की एक नई अठन्नी ढाले और निकल की अठन्नी बद कर दे।

(६) एक्सचेन्ज का भाव वही पुराना १ शि० ४ पे० कर दिया जाय।

(७) सरकार अपनी आवश्यकता के अतिरिक्त और हुंडियां न करे और जो हुंडिया की जायें वे सालाना बजट में दिखाई जायें।

(८) एक रुपये के नोट जहां तक संभव हो शीघ्र बंद कर दिये जायें और जो मौजूद हैं वे काम में न लाये जायें।

(९) हिन्दुस्तान का जो रुपया विलायत में कागजों में मौजूद है उसका सोना करके हिन्दुस्तान में भेज दिया जायें।

(१०) प्रचलित सिक्कों को गलाने का जो लोगों का बहुत प्राचीन अधिकार है, उसमें सरकार कुछ बाधा न डाले।

(११) करन्सी नोट हिन्दुस्तान में ही छापे जायें।

करन्सी कमेटी के सामने अनेक लोगों की गवाहियां हुई थीं। उनमें कुछ लोगों ने यह राय दी थी कि या तो रुपया निकल का चलाया जाय या कम चांदी का चलाया जाय। श्रीयुत् दलाल की राय ऊपर दी हुई है। कमेटी के अधिकांश मेम्बरों ने इस बात का खण्डन करते हुए कहा है कि सन् १८३५ से रुपया इसी दशा में चला आ रहा है और गांव के सुनार तक इसे अच्छी तरह जान गये हैं, यही देश का असली सिक्का है

र हमें विश्वास दिलाया गया है कि यदि इसमें जरा भी फेर
र होगा तो सरकार की बात में बड़ा भारी बट्टा लगेगा और
का फल बड़ा ही अनिष्ट कारी होगा। कमेटी ने यह भी
डा है कि चांदी का हलका रुपया जारी होने से ग्रेशम सिद्धान्त
अनुसार पुराना रुपया बाजार से लोप हो जायेगा और
सिक्के की मांग बहुत बढ़ जायेगी और इसके लिए अधिक
दी की जरूरत होगी जिसका मिलना बड़ा कठिन है। हमारी
झ में श्रीयुत् दलाल की राय बहुत ठीक थी। यदि करन्सी
टी ने श्रीयुत् दलाल की राय, ठीक नहीं समझी तो उसने
। रु वाले नोटों पर अपना मत क्यों नहीं प्रकट किया ? इन
। रु. वाले नोटों से भी तो ग्रेशम के सिद्धान्त के
नुसार पुराने रुपयो का लोप होगा। चाहे करन्सी
टी ने ध्यान नहीं दिया पर हम आशा करते हैं कि श्रीयुत्
ाल की राय मान कर नहीं किन्तु करन्सी कमेटी के सिद्धान्त का
अनुकरण करके गवर्नमेंट १) रु० वाले नोटों को शीघ्र बंद
ने का उद्योग करेगी। छोटे सिक्कों में अठन्नी भी कीमती
का है। यह समझ में नहीं आता कि करन्सी कमेटी ने किस
द्धान्त पर निकल की अठन्नी बनाने के लिए गवर्नमेंट का समर्थन
या है।

पहले चांदी के सिक्के में गवर्नमेंट को खूब लाभ हुआ है
यों में ॥) आने की चांदी रहती थी। इस तरह सिक्के में जो लाभ

होता था वह स्वर्ण मुद्रा कोष मे अलग जमा होता था । इस तरह सिक्के के फायदे से जमा होते हुए इस रिजर्व कोष में नवम्बर १९१९ को ३ करोड़ ७४ लाख ३८ हजार ३१७ पौंड जमा थे। उचित तो यही था कि जब सिक्के के ढालने से जो लाभ हुआ वह इसमें जमा किया गया तो उससे हानि हो वह भी इसी फंड से लेना चाहिये। करन्सी कमेटी ने एक्सचेंज के रेट बढने से कई फायदे बताए हैं। एकतो चांदी तेज होने पर भी वह खरीद कर सिक्के बनाने के काम में लाई जा सकती है और इससे भारतवर्ष में गेहू आदि आवश्यक पदार्थों का भाव भी मन्दा रहेगा। करन्सी कमेटी ने यह तो स्वीकार किया है कि एक्सचेंज के इस भाव से विलायत का माल आकर सस्ता पड़ेगा और इससे हिन्दुस्तान के रफ्तनी के व्यापार और कारीगरों को नुकसान होगा। पर वह कहती है ज्यादा नुकसान नहीं होगा। एक्सचेंज के इस भाव से भारत के गेहू आदि आवश्यक ,पदार्थो का भाव जितना सस्ता होगा उतना ही भारत के लिये कल्याणकारी होगा। उस समय अन्नादि का तेज होना किसी तरह उचित नहीं था। पर यह मानने के लिये हम तैयार नहीं हैं कि यदि एक्सचेंज का यह भाव न होता तो अन्न आदि का भाव इतना तेज हो जाता कि भारतवासी त्राहि २ ही करने लगते पर भी मानने के लिये हम तैयार नहीं हैं कि केवल भारतवासियों को आवश्यक पदार्थ अधिक सस्ते मिलने लगे इसोलिये एक्सचेंज का

ा यह भाव रखा गया हो। हमारी समझ में करन्सी कमेटी की रिपोर्ट बड़ी ही असंतोष जनक है और इससे रफ्तनी के व्यापार यानी एक्सपोर्ट ट्रेड को बड़ा भारी धक्का पहुंचेगा। श्रीयुत् लाल ने यह बहुत ठीक कहा कि कि युद्ध के समय में गवर्नमेंट जिन उपायो का अवलम्बन करती वही ठीक था र युद्ध के बाद एकदम काया पलट कर देने वाले उपायों का अवलम्ब करना किसी तरह भी ठीक नहीं कहा जा सकता। करन्सी कमेटी ने एक्सचेंज का जो भाव बढ़ाने की सम्मति दी है ह यह समझ कर दी है कि ससार में चीजो का मूल्य बढता ही जायगा, कम नहीं होगा। कमेटी कहती है कि यदि चीजो का भाव एकदम से घट गया और भारत में कच्चे माल के पैदा होने में मजदूरी आदि मे खर्च ज्यादा पडने लगा तो फिर नये सिरे से इस मामले पर विचार करना पड़ेगा। हमारी समझ मे कमेटी को सभी बातों पर ख्याल करते हुए अपना मत निश्चित करना था। एक्सचेंज के इस भाव का एक लाभ यह भी बताया गया है कि १शि० ४ पेंस के भाव मे हिन्दुस्तान से विलायत को होम चार्ज के लिये जो ३७॥ करोड़ रुपया भेजना पड़ता था उसकी जगह २५ करोड़ ही भेजना पड़ेगा यानी १२॥ करोड़ का लाभ होगा। पर पेपर करेन्सी रिजर्व में जो हिन्दुस्तान का रुपया पौंडों मे जमा है उसका २ शि० के भाव से फिर से हिसाब लगाने पर उसमे ३८ करोड़ ४० लाख का नुकसान होगा।

कमेटी कहती है कि यह नुकसान ऊपर के फायदे से थोड़े दिनों मे भर जायगा। कमेटी ने होम चार्ज में जो लाभ हुआ है उसे बहुत समझा है परन्तु नुकसान की ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया। कमेटी होम चार्ज में जो १२॥ करोड़ का लाभ बतलाती है वह अप्रत्यक्ष रूप से भारतवासियों पर ही टैक्स लगाना है। जितना गवर्नमेन्ट को लाभ होगा उतनाही रुपया व्यापारियों और किसानों को अपने माल का कम मिलेगा। हमेशा के लिये एक्सचेंज का रेट १ शि० ४ पेंस या २ शि० या इससे अधिक होना हम किसी तरह भारत के लिये कल्याण कारी नहीं समझते। यदि थोड़े दिनों के लिये यह बात होती तो हम किसी तरह मान भी लेते। लन्दन के 'टाइम्स' पत्र ने भी यह बात स्वीकार की है कि एक्सचेंज के इस (रेट) भाव से विलायत से हिन्दुस्तान को माल भेजने वाले व्यापारियों के हर तरह पौबारह होंगे और हिन्दुस्तानी व्यापारियों को नुकसान होगा। पर हिन्दुस्तानियों के आंसू पोंछने के लिये वह कहता है कि अभी सारे संसार में हिन्दुस्तान के कच्चे माल की बहुत माग होगी इस लिये उसे घबराना नहीं चाहिये। इस रिपोर्ट में और भी अनेक आवश्यक बातें हैं। श्रीयुत् दलाल कहते हैं कि गिन्नी का कानून से जो १५) रु० का भाव नियत है उसे बदलने का सरकार को अधिकार नहीं है। वे कौन्सिल के अन्य कानूनों की अपेक्षा निश्चित भाव को अधिक पुष्ट समझते हैं। वे कहते हैं

कि इससे गवर्नमेन्ट के अतिरिक्त लोगो को बडी हानि होगी; क्योंकि इस समय लोगो के पास करीब ५ करोड़ गिन्निया है। कमेटी ने राय दी है कि पेपर करन्सी रिजर्व मे जितने नोट जारी हो उनके पीछे ४० रु० सैकड़ा रोकड रहना चाहिये पर श्रीयुत् दलाल की राय है कि ८०) रु० सैकड़ा रहना चाहिये।

पेपर करन्सी रिजर्व (संरक्षित कोष)

यदि युद्ध के समय मे करन्सी कमेटी एक दम से कायापलट देने वाले उपायो के अवलम्बन करने की सम्मति देती तो उनका समर्थन किया जा सकता था पर जब युद्ध खतम हो गया है ऐसी दशा में किसी प्रकार इन उपायों का समर्थन नहीं किया जा सकता। युद्ध के पहले यह नियम था कि पेपर करन्सी रिजर्व मे जो खजाना रहता है उसमें से ज्यादा से ज्यादा १४ करोड रुपये तक के ब्रिटिश ट्रेजरी बिल्स आदि माकूल तरह के प्रामिसरी नोट रखे जा सकते हैं। पर युद्ध के समय मे गवर्नमेन्ट ने ६ नये २ हुक्म निकाल कर इस १४ करोड रुपये की तादाद को १२० करोड रुपये कर दिया है। इस युद्ध के समय में नोटो का प्रचार रहने से तिगुना बढ़ गया है। पहले जो नोट जारी होते थे उनकी जगह करीब ८० फी सदी चादी या सोना पेपर करन्सी रिजर्व मे रहता था अब करीब आधा रहता है। नीचे दिये हुये नक्शे से पाठकों को सब बातें विशेष रूप से मालूम होगी।—

पेपर करन्सी रिज़र्व का ब्यौरा

रुपयों की तादाद लाखों में

		कुल नोट जारी हुए	चाँदी	सोना	कागज	मीज़ान	कुल जारी नोटों पर फ़ी सैंकड़ा सोना चाँदी
३१ मार्च	१९१४	६६१२	२०५३	३१५९	१४००	६६१२	७८ ८
३१ ,,	१९१५	६१६३	३२३४	१५२९	१४००	६१६३	७७ ३
३१	१९१६	६७७३	२३५७	२६१६	२०००	६७६३	७० ५
३१ ,,	१९१७	८६०८	१९२२	१८६७	८४९	८६३८	४३ ९
३१ ,,	१९१८	९९७९	१०७९	२७५२	६१४८	९९७९	३८ ४
३१ ,,	१९१९	१५३४६	३ ३९	१७४९	९८५८	१५३४६	३५ ८
३१ नवम्बर	१९१९	१७९६७	४७४४	३२७०	९९५३	१७९६७	४४ ६

इस ऊपर दिये हुये नक्शे से विदित होगा कि सन् १९१४ १९१५ और १९१७ में इन ३ सालों में नोटों का प्रचार प्राय वही रहा । किन्तु सन् १९१७ में नोटों का प्रचार ६७७३ लाख रुपये से बढकर ८६३८ लाख रुपये हो गया और सन् १९१८ मे यह सख्या ९९७९ लाख होगई। इससे यह पता लगेगा कि मार्च सन् १९१४ से से लेकर मार्च १९१८ तक ४ वर्षों में नोटों की सख्या बढ कर करीब ड्यौढी होगई। इसके बाद पाठको को यह विदित ही है कि नवम्बर १९१८ में क्षणिक सन्धि होकर युद्ध खतम हुआ। आश्चर्य होता है कि नोटों का ज्यादा प्रचार इधर १। वर्ष में ही हुआ है। मार्च १९१८ तक ९९७९ लाख रुपयो के नोट जारी हुए थे कि किन्तु मार्च १९१९ को नोटों की रकम की तादाद १५३४६ लाख होगई यानी एक साल में ड्योढी से ज्यादा। ३० नवम्बर १९१९ को कुल जारी हुए नोटो की रकम १७९६७ लाख थी यानी १। वर्ष में करीब दूनी होगई। करन्सी कमेटी की रिपोर्ट से पता लगता है कि ३१ मार्च सन् १९१९ तक २॥) रु के नोट १८४ लाख रुपये से अधिक के और १) रु के नोट १०५० लाख रुपये से अधिक के जारी हो चुके थे। जहा सन् १९१४ में १४ करोड़ रु के प्रामिसरी नोट पेपर करन्सी रिजर्व में थे वहीं सन् १९१९ में ९९ करोड़ ५३ लाख रुपये के प्रामिसरी नोट थे।

यह हम ऊपर कह ही चुके हैं कि अब गवर्नमेंट ने १२० करोड़ रुपये के प्राभिसरी नोट रखना निश्चय कर लिया है। उसके इस कार्य को करन्सी कमेटी ने भी पसन्द कर लिया है और उसने राय दी है कि १४ करोड़ के समान पक्का कानून बना कर भी १२० करोड़ के नोट रखने की बात मजूर करा लेनी चाहिये। ऊपर दिये हुए अकों से यह भी पता लगेगा कि मार्च सन् १९१४ में पेपर करन्सी रिजर्व मे कुल जारी होने वाले नोटो की तादाद पर चांदी और सोना फी सदी ७८ ९ था, मार्च सन् १९१९ में ३५ ८ था और नवम्बर १९१९ में ४४ ६ था। करन्सी कमेटी ने यह राय दी है कि अब जितने नोट जारी हों उनमें करन्सी में ४० की सदी से ज्यादा रोकड़ नहीं रखना चाहिये। किन्तु श्रीयुत् दलाल की राय में ८० फी सदी रखना कुछ भी ज्यादा नहीं है और उन्होंने दिखाया है कि सन् १९१० से लेकर सन् १९१५ तक ७८ २ फी सदी रोकड़ रखने का औसत आता है। हम भी श्रीयुत् दलाल की इस राय का समर्थन करते हैं और चाहते हैं कि लोगों का पूरी तरह विश्वास बनाये रखने के लिये ८९ फी सदी करोड़ जरूर रखना चाहिये। श्रीयुत् दलाल की यह राय भी बहुत ठीक है कि पेपर करन्सी के जो कागज लन्दन में रखे हैं उन्हें भुनाकर उसका सोना चांदी मदा आकर पेपर करन्सी रिजर्व में जमारहना चाहिये। वास्तव में ऐसी शान्ति के समयमें

ऐसे उग्र उपायों का अवलम्ब करना किसी तरह भी ठीक नहीं है। श्रीयुत् दलाल ने लिखा है:—

"It was a case of simply watering the note issue to its worst fate by issuing notes without any metallic backning In other words, it was a forced loan from the Indian Public free of Interest"

अर्थात् "यह तो बुरी से बुरी तरह पानी की तरह नोटों का प्रचार किया गया यानी नोट तो जारी किये गये पर उस के लिये सोना चांदी न रखा गया। दूसरे शब्दोमें हिन्दुस्तानी लोगों से बिना व्याज जबरन कर्ज लिया गया।"

श्रीयुत् दलाल के ये शब्द कुछ उग्र अवश्य है पर उनका लिखना यथार्थ ठीक है और उन्होंने जो आशय प्रकट किया है उसका बुद्धि रखने वाले भारतवासी मात्र समर्थन किये बिना न रहेंगे। श्रीयुत् दलाल ने अपनी रिपोर्ट मे वायसराय के ८ नवम्बर १९१९ के तार का उल्लेख किया है जिसमें उन्होंने लिखा था कि सन् १९१८ में मध्यप्रदेश मे करन्सीनोटों का भाव १९) रु बंगाल में २५) रु और बर्मा में १३॥) रु सैकड़ा बट्टे पर था। और सन १९१९ में ज्यादा से ज्यादा ३)रु सैकड़ा बट्टा था। श्रीयुत् दलाल कहते हैं कि यद्यपि बट्टा अब कम होगया है पर इतना अधिक बट्टा होने का लोगों पर स्थाई प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। यह भी ध्यान देने की बात है कि यह नोटों का बट्टा

भिन्न २ प्रान्तों में फैला हुआ था। ऐसी दशा में पेपरकरंसीरिजर्व में इतने अधिक प्रामिसरी नोट और इतनी कम रोकड़ रखने से भारतवासियों का क्या और कहांतक हित होगा यह कहने की आवश्यकता नहीं। यह हम जानते हैं कि गवर्नमेंट और भारत मंत्री ने जो इरादा कर लिया है, उससे वे तिल भर भी हटने वाले नहीं हैं। पर कौंसिल के मेम्बरोंको इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

हिन्दुस्तानी व्यापार पर आफत

करन्सी कमेटी ने एक्सचेंज का भाव कम से कम २ शिलिंग रखने की जो सम्मति दी है उससे भारतवर्ष के रफ्तनी के व्यापार और यहां की कारीगरी के कामों को तो नुक्सान होगा ही इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं है। एक्सचेंज के इस भाव से विलायत के व्यापारियों को उन चीजों में जो वे हिंदुस्तान को भेजते हैं पूरा लाभ होगा और उन्हें अनेक प्रकार की सुगमताएं प्राप्त होंगी। एक्सचेंज के इस भाव से विलायत के व्यापार को लाभ होना अवश्यम्भावी है। इस बात को हम और स्पष्ट रूप में दिखाते हैं। इस लड़ाई के कारण यों तो संसार के सभी देशों में रुपये की पूरी तरह खुश्की होगई है और सब चीजों का भाव तेज हो गया है पर जो देश युद्ध में शामिल हुए उनकी दशा बड़ी ही शोचनीय होगई है। इस दृष्टि से विचार करने पर भारत की दशा खराब होने पर भी इतनी खराब नहीं हुई है। करन्सी कमेटी ने चीजों के भाव का एक नक्शा दिया है। सन् १९१० में जो

निर्ख़ था वह १०० मान लिया गया है। यह नकशा इस प्रकार है.—

चीजों के निर्ख़ का नकशा।

साल	खाद्य पदार्थों का फुटकर औसत भाव	विलायतसे भारत मेंआईहुईचीजोंका अधिकतरथोकका औसत भाव	हिन्दुस्तानसेविलायत जाने वाली चीजोंका अधिकतर थोककाऔसतभाव
१९१०	१००	१००	१००
१९११	९६	१०४	१०७
१९१२	११२	१०७	११४
१९१३	११८	१०७	१२१
१९१४	१३२	१०५	१२६
१९१५	१३०	१३४	१२२
१९१६	१२०	२१७	१२८
१९१७	१२०	२४०	१३४
१९१८	१६१	२६५	१५७

इससे यह पता लगेगा कि भारत में खाद्य पदार्थों का भाव सन् १९१४ में १३२ था, और १९१८ में १६१ होगया इसी प्रकार विलायत से आई हुई चीजों का भाव सन् १९१४ में १०५ और सन् १९१८ में २६५ था और यहां से विलायत जाने वाली चीजों का भाव १९१४ में १२६ और १९१८ में

२५७ था। और इससे प्रकट होता है कि विलायत से आने वाले माल में अनाप सनाप तेजी होगई है। तेजी तो जाने वाले माल में भी हुई है पर आने वाला माल तो बहुत तेज होगया है। यदि एक्सचेज का भाव वही पुराना १ शि० ४ पे० का हो तो विलायत से हिन्दुस्तान माल आना कठिन और एक प्रकार से असम्भव सा होजायगा। क्योंकि माल आकर बहुत तेज पडेगा और भेजने वालों को घाटा होगी। करन्सी कमेटी ने सूती कपडे का भाव भी विशेष रूप से दिया है —

भारत का सूती कपडा।

सन् १९००–९	१९१४	१९१५–१७	१९१८–१९
१००	१०९	९४	१६४

विलायत से आया सूती कपडा

सन् १९००–९	१९१४	१९१५–१७	१९१८–१९
१००	११२	१३८	२०६

अब यदि और चीजों का ख्याल न करके कपडे का भाव लिया जाये तो विलायती कपडा देशी कपडे से बहुत तेज आकर पड़ेगा। मान लीजिये इस समय एक्सचेंज का भाव २ शि० ८ पेंस है। पहले जो १ शि० ४ पें० का भाव था उसका यह दूना हुआ। पहले जो कपडा १) रु० में बिकता था यदि इस समय ॥) आने को बेचा जाय उस समय तक बेचने वाले को पहले

के समान ही दाम मिलेंगे । बेचने वाले को विलायत में जिस कपड़े के जो दाम मिलते थे उससे ज्यादा मिलेंगे और यहा खरीददार को भी सस्ता पड़ेगा । इस प्रकार मामूली तौर पर यद्यपि यह भारत वासियों के लिये ऊपर से देखने में अच्छी मालूम होती है पर इससे भारत के व्यापार का तो बहुत कुछ नाश हो जायेगा । इस बात को करन्सी कमेटी ने भी स्वीकार किया है कि एक्सचेंज का इतना ऊंचा भाव रहने से विलायत के तिज़ारत को लाभ होगा और हिन्दुस्तान की तिजारत को कुछ हानि होना भी सभव है पर और २ बातो में फुसला कर उसने भारतवासियों के आंसू पोछने का यत्न किया है। पाठक और स्पष्टरूप से समझे। विलायत से एक तरह का कपड़ा आता है। उसी तरह का कपड़ा हिन्दुस्तान का बना भी ले लीजिए। मान लीजिये पुराने एक्सचेंज के भाव मे उस विलायती कपड़े का भाव २) रु और हिन्दुस्तानी कपड़े का भाव १||) रु० था। जब ठीक वैसा ही माल १||) रु में मिलेगा तो २) रु कौन देगा। पर एक्सचेंज की कल जरा इधर से उधर घुमादेने से विलायत वाले अब कपड़ा १) रु. में बेच सकते हैं यानी देशी से भी सस्ता बेंच सकते हैं और नुक्सान की जगह फायदा ही उठा सकते हैं। देशी व्यापारियो और कारीगरों को अपने माल के दाम कमती मिलेंहीगे पर विलायत जाने वाली रुई, जूट आदि चीजों का भाव भी एक दम से गिर

जायगा और हमारा माल बाहर जाना बंद हो जायगा। यद्यपि विदेशियों को हमारा माल यहा सस्ता पडेगा पर इस एक्सचेंज की माया से उन्हें विलायत में दाम ज्यादा देना पडेगा। पुराने एक्सचेंज के भाव मे हमें जिस माल का १) रु यहा मिलता उसका उन्हे १ शि० ४ पेंस वहा देना पड़ता था पर अब जिस माल का यहा १) रु भाव होगा उसका उन्हे विलायत में २ शि० ८ पेंस देना पडेगा। यानी हमारे माल के दाम यहा हमे तो पहले से कम मिलेंगे और विलायत वालो को ज्यादा देने पडेंगे। जब विलायत वालों को हमारा माल ज्यादा तेज पडेगा तो वे हमारा माल क्यों मोल लेने लगे? इस तरह व्यापारिक दृष्टि से हमारे माल की यहा भी मिट्टी खराब और वहा भी खराब। यह जरूर है कि भारत की इस शोचनीय दशा में यदि आवश्यक पदार्थों का भाव जितना ही कम रहे उतना ही अच्छा पर यदि भारतवर्ष आज तक भी इस प्रतिद्वन्द्वता के जमाने में इस कुटिलता पूर्ण यूरोपीयसभ्यता के धोखे में आकर इसी नीति को धर्म पूर्ण समझता रहा तो यही कहना पडेगा कि व्यापारिक दृष्टि से भारत वर्ष का शीघ्र ही अध पतन होने वाला है और साथ ही यहा का रहा सहा धन भी ढुल कर विलायत चला जायेगा।

एक्सचेंज का भाव (रेट)

करन्सी कमेटी ने एक्सचेंज का भाव इस दृष्टि से विचार कर निश्चित किया है कि हिन्दुस्तान में बराबर चांदी के सिक्के का

ही व्यवहार रखा जाय और कभी जरूरत पड़े तो थोड़ा बहुत सोने के सिक्के से भी काम ले लिया जाय। यह सोने के सिक्के की जरूरत इसलिये बताई गई है कि विदेशों से लेन देन सोने ही के द्वारा होता है और विदेशों को सोने के सिक्के की बराबर जरूरत पड़ती है। करन्सी कमेटी कहती है कि लोगों के पास सोना रहने से नुकसान ही होता है। भारतवर्ष के हित के लिये सोना अधिकतर सरकारी खजाने मे ही रहना जरूरी है। सन १८१६ से पहले यहा चादी का ही सिक्का जारी था। सन् १८-९३ मे हरशल कमेटी की सम्मति के अनुसार रुपया ढालना बद हुआ और सोने का सिक्का जारी हुआ। पहले एक्सचेंज का भाव १३ पेंस था और गिन्नियों के प्रचार व रुपये की कमी से वह भाव धीरे २ बढकर सन् १८१६ में १६ पेंस यानी १ शि० ४ पेंस हो गया। तब से यही भाव जारी रहा सन् १८९७ मे फाउलर कमीशन जाच करने के लिये बैठा उसने राय दी कि भारतवर्ष मे मुख्य रूप से सोने का ही सिक्का चलना चाहिये और पूरी तरह यहा सोने की टकसाल खुलनी चाहिये और केवल मदद देने के लिये चादी का सिक्का भी रहे। हरशल कमेटी ने जिस प्रकार सोने के सिक्के के प्रचार की सम्मति दी वह "गोल्ड एक्सचेंज स्टेंडर्ड" प्रणाली कही जाती है और फाउलर कमेटी ने जिस प्रकार सोने के सिक्के के प्रचार की सम्मति दी वह 'गोल्ड स्टेंडर्ड' प्रणाली कही जाती है। पहली प्रणाली विलायती व्या-पार के लाभ के लिये नाम मात्र सोने के सिक्के का भारतवर्ष

मे प्रचार करना चाहती है और दूसरी प्रणाली इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमरीका जैसे देशों के समान पूरी तरह शुद्ध रूप मे सोने के सिक्के का प्रचार करना चाहती है। फाउलर कमेटी की राय को भारतसरकार और प्रान्तीय सरकारों ने पसद किया। अधिकाश शिक्षित भारतवासियो ने भी फाउलर कमीशन के मत का समर्थन किया। पर सन् १९१४ में चेम्बरलेन कमीशन ने राय दी कि चाहे कभी २ सोने का सिक्का भी ढाल लिया जाय पर पूरी तरह यहा सोने की टकसाल नहीं रहनी चाहिये और एक्सचेंज के काम के लिये यहा 'गोल्ड एक्सचेंज स्टैंटर्ड' प्रणाली ही रहनी चाहिये। लडाई के कारण चेम्बरलेन कमीशन की राय पर विचार नहीं किया गया। इस युद्ध में ससार की अन्य देशो की करसी के समान भारतवर्ष को भी अनेक कष्ट उठाने पडे। अब इधर ३० मई १९१८ को भारत मन्त्री मि० माटेगू ने यह

नई करन्सी कमेटी

फिर से सब मामलो पर विचार करने के लिये सर हेनरी बेबिंगटन के सभापतित्व में नियत की। इस कमेटी के कुल ११ मेम्बरों में १० अग्रेज और १ भारतीय मेम्बर थे। इस कमेटी की सब बठके लदन ही में हुई। करन्सी कमेटी के हिन्दुस्तानी सदस्य श्रीयुत् दलाल ने जो राय दी है उससे प्राय हम समझते है। भारत के हित के लिये यह आवश्यक है कि वहीं १६ पेंस यानी १ शि० ४ पे का भाव रखा जाये। यह हम मानते हैं कि चान्दी का भाव इतना अधिक तेज हो जाने से बड़ी कठिनाई

उपस्थित होगई है। यदि थोड़े ही काल के लिये भारत के हित पर पूरी तरह दृष्टि रखते हुये इस एक्सचेंज के रेट को बढ़ाना भी उचित समझा जाय तो भी हम उसका समर्थन करने के लिये तैयार हैं पर हमेशा के लिये स्वेच्छा पूर्वक इस कार्य के करने का हम पूर्ण प्रतिवाद करते हैं। करन्सी कमेटी से एक्स-चेंज के रेट को निश्चितता का रूप देने के लिये कहा गया था। उसने एक्सचेंज के भाव को ऐसी अनिश्चितता प्रदान की है जो

एक्सचेंज के इतिहास।

से कभी नहा हुई। हम पाठकों को स्पष्ट रूप से सम-झायेंगे। पहले सोने की गिन्नी और पौंड के नोट का भाव बराबर था इसलिये एक्सचेंज का भाव जो १६ पेंस था वह नोटों में भी था पर यह २ शि० का भाव नोटों में नहीं सोने में है। इस समय इस पौंड नोट और गिन्नी मे बड़ा फर्क है। ८ मार्च सन् १९२० को लंदन में सोने का भाव ११५ शि० ६ पेंस फ़ी औंस था। एक औंस में ४८० ग्रेन होते हैं और एक गिन्नी में ११३ ग्रेन सोना लगता है। १०० औंस सोने में ४२५ गिन्नियां बनती हैं। इस प्रकार १०० औंस के दाम ५७७ पौंड १० शि० हुये यानी एक पौंड नोट का मूल्य सोने का ७३ गिन्नी के बराबर हुआ यानी कागज पौंड का भाव सोने की गिन्नी से २७ फी सदी कम रहा और सोने की १ गिन्नी का दाम १ ३५ पौंड नोट के बराबर हुआ यानी पौंड नोटसे गिन्नी

का मूल्य ३५ फ़ी सदी ज्यादा रहा। इस समय अमरीका ही में सोने का लेन देन है और सब जगह कागजी घोड़े ही दौड़ते हैं और भारतीय एक्सचेंज का भी अमरीका के साथ गठजोड़ा कर दिया गया है। इस समय एक्सचेंज की जैसी स्थिति हो रही है उसका भी कुछ दिग्दर्शन करा देना उचित होगा। इसके पूर्व कि इस सम्बन्ध में हम कुछ लिखने का प्रयत्न करें, पाठकों को हिन्दुस्तान और विलायत की सरकारी हुण्डियों के विषय में जानकारी हासिल कर लेनी चाहिये। सबसे पहले 'होम-चार्जेज' शब्द को जान लेना चाहिये। होम चार्जेज रुपयों की वह तादाद है जो भारतसरकार प्रति वर्ष इंग्लैंड को देती है। भारत सचिवके दफ्तर आदि का व्यय, विलायती साहूकारों के हिन्दुस्तान में काम में लगे हुए रुपयोंका सूद, भारतीय सरकारके फौजी या सिविल कर्मचारियों का वेतन पेन्शन आदि २ कुल मिला कर ३७३ करोड़ रुपये इंग्लैंड भेजना पड़ते हैं। किन्तु यह रुपया जैसा कि बहुतेरे पाठक अनुमान कर लेंगे जहाजों में लाद कर इंग्लैंड नहीं भेजा जाता। यह रुपया इस प्रकार दिया जाता है कि भारत मन्त्री विलायत में हिन्दुस्तान की सरकार के नाम हुण्डिया बेंचते हैं। विलायत के व्यापारी इन हुण्डियों को खरीद कर भुगतानके लिये उन्हें भारत के व्यापारियों के पास भेजते हैं और भारत सरकार इन्हें हुण्डी का रुपया चुका देती है। इस प्रकार बिना किसी कष्ट के एक दूसरे की भरपाई हो जाती है। इन्हीं हुण्डियों को कौन्सिल बिल या कौन्सल ड्राफ्ट कहते हैं। अब यह जानना चाहिये कि ये

हुण्डिया किस भाव बिकती हैं। जिस समय एक्सचेंज का भाव अर्थात् रुपये और पौंड का विनिमय १ शि० ४ पेन्स के हिसाब से था तब हुण्डिया १ शि० ३२९ पेंस से १३ पेंस तक बिकती थी अर्थात् रुपये का भाव उस समय १६ पेंस हुआ। महायुद्ध के पूर्व यही भाव था पर युद्ध के कारण बहुत कुछ परिवर्तन हुआ इधर चांदी का भाव भी बढ़ गया। एक्सचेंज का भाव (रेट) भी बढ़ गया। अस्तु, भारतमन्त्री प्रति सप्ताह ये हुण्डिया बेचते हैं। इन हुण्डियों के भाव के सम्बन्ध में केवल यह ध्यान रखा जाता है कि इनका भाव इतना तेज न होने पाए कि विलायती व्यापारियों को हुण्डिया खरीदने की अपेक्षा सोना चांदी ही भारत में भेजने से विशेष लाभ हो। क्योंकि जब व्यापारियों को इस कार्य में हुण्डियों से अधिक सुविधा होगी तो हुण्डियों के खरीदने में लाभ ही कौनसा होगा?

अब एक्सचेंज का भाव तेज क्यों होता है, यह भी संक्षेप में जान लेना चाहिये। व्यापार में यह एक साधारण सिद्धान्त है कि आवश्यकता की अधिकता और वस्तु का विशेष उपयोगिता से उसका मूल्य बढ़ जाता है। जब विलायत के व्यापारियों को भारत में अधिक रुपया भेजना होता है तो हुण्डियों की मांग सहज बढ़ जाती है और इसी से उनका भाव तेज हो जाता। इन तेजी से व्यापारियों को हानि और भारत मन्त्री को लाभ होता है। और भाव मंदा होने से भारत मन्त्री को हानि और व्यापारियों को लाभ होता है।

यह तो हुआ कौन्सल डाफ्ट या विलायती हुण्डियो के बारे में अब 'रिवर्स कौन्सल' यानी भारतीय हुण्डियों के विषय में कुछ जान लेना आवश्यक है। इन हुण्डियों को भारत सरकार हिन्दुस्तान के व्यापारियो को भारत मन्त्री पर बेचती है । जिस समय एक्सचेंज का भाव गिरता है अर्थात् विनिमय की दर घट जाती है भारत सरकार को इन हुण्डियों के बेचने में लाभ है पर भाव तेज होजाता है तो भारत सरकार को हानि उठानी पड़ती हैं। किन्तु ये हुण्डिया भारत सरकार भारत मन्त्री की आज्ञा बिना नहीं बेच सकती, क्योंकि भारत मन्त्री तो अपनी वार्षिक व्यय वसूल करने के लिये अपने यहा की हुण्डिया बेंचने के लिए बाध्य हैं। पर भारत को वैसी कुछ आवश्यकता नहीं। उसका हुण्डिया बेचना तो केवल पौंड के भाव को स्थिर कर देने के लिये है। करन्सी कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार भारत सरकार १० रु० का पोंड निश्चय कर चुकी है अत यह विचारणीय है कि इस समय भारत सरकार को रिवर्स कौंसिल बेचने में लाभ है या हानि साथ ही भारत मन्त्री को भी अपनी हुण्डिया बेंचनी चाहिये या नहीं। इसमे भारत मन्त्री की अर्थात् विलायती हुण्डियों के बेचने से हम भारत के लिये कोई हानि नहीं देखते। पर भारत सरकार को 'रिवर्स कौंसिल' बेचने में हानि है और शायद इसीलिए भारत सरकार ने यह प्रकट किया है कि अब से प्रति सप्ताह रिवर्सकौन्सिल का बेंचना बन्द किया जाता है साथ ही यह भी विश्वास दिलाया है कि वह आव-

श्यकता पड़ने पर फिर उन्हे बेंच सकेगी। हम पूछते है कि जनता के विरोध करते रहने पर भी भारत सरकार ने अब तक उन्हे बेच कर कौन सा लाभ उठाया ? हमे यह बतलाया गया है कि भारतीय नोटों मे बहुत न्यूनता हो गई है। भारत सचिव भारतीय हुण्डियो पर ट्रेज़री बिल उलट कर भेज देते थे। परन्तु विनिमय को स्थिर रखने के लिये भारत सरकार का उद्देश्य क्या इससे सफल हो गया ? सरकार के इस कथन में हमे कोई सार नही प्रतीत होता कि भारतीय हुण्डियों के भुगतान का अन्य कोई उपाय न था।

ज्यो ही भारत सरकार ने रिवर्स कौन्सिल बेंचना बन्द कर दिया त्यों ही एक्सचेंज का भाव एक दम गिर गया। जिस कारण व्यापारिक ससार बडा क्षुब्ध हो गया। इस सम्बन्ध मे विरोध और प्रतिरोध इतने अधिक हैं और विचार इतने अधिक और जटिल है कि यह निश्चय करना कठिन है कि वास्तविक बात क्या है ? प्रत्येक व्यक्ति अपने भिन्न विचार प्रकट कर रहा है। यूरोपियन चेम्बरर्स आफकामर्स रिवर्स कौन्सिल फिर से २ शि० के भाव मे बेंचने के लिये चिल्ला रहे हैं और भारतीय चेम्बर्स आफकामर्स उसका विरोध कर रहे हैं। रिवर्स कौन्सलस् को केवल भारतीय आयात और निर्यात से ही सम्बन्धन जानना चाहिये अपितु भारत की आर्थिक और मुद्रा अवस्था से भी उसका बहुत सम्बन्ध है। रिवर्स कौन्सल्स भारत के लिये सर्वकालीन नहीं है।

ये उसी समय बेंचे जाते हैं जब भारतीय व्यापार का अवशेष अर्थात् बाकी भारत के प्रतिकूल हो। इसके लिये लार्ड कर्जन के समय में एक अतिरिक्त कोष कायम हुआ था और जो लदन मे रखा गया था। साधारण रूप से भारतीय व्यापार का अवशिष्ट यानी बकाया भारत के अनुकूल रहता है अतएव यह कहना बिल्कुल व्यर्थ और प्रमाद पूर्ण है कि कौन्सलो का विक्रय निरन्तर जारी रहे। इनके बेंचने से देश को बड़ी हानि हुई है और इनसे विनिमय को निरन्तर स्थित रखने में बिल्कुल सहायता नहीं मिली। इन बिलों के सम्बन्ध में कतिपय अर्थशास्त्रज्ञों और बैंको ने जो भाग लिया वह अवश्य ही दुर्भाग्य का विषय है। इन कौन्सलों से विनमय के स्थिर रखने में कुछ भी सहायता नहीं मिली और भारत सरकार को भी अपनी भूल मालूम हो गई है। विनिमय का भाव अपना स्वतन्त्र मार्ग खोज रहा है और रुपये का प्रचलन सुदृढ हो रहा है, यह स्वाभाविक ही है। व्यापार के पुनर्संगठन से बिलों का विक्रय परिमित होना आवश्यक ही है और इसी से एक्सचेज का गिरना अनिवार्य है। इसी बीच में भारत में माल भेजने वालों को, यदि उनने यूरोपीय सिक्कों में मोल लिया है, बड़ी हानि होगी। अस्तु,

हम आशा करते हैं कि सरकार भारत को और अधिक एक्सचेंज की प्रयोगशाला न बनायेगी। साथ ही हम यह भी विश्वास करते हैं कि एक्सचेंज कृत्रिमता पूर्वक कम

नहीं रखना चाहिये। जब तक एक्सचेज के प्रबन्ध में इस प्रकार की कृत्रिमता है तबतक वह निंदार्ह है। भारतीय उद्योगों का इससे अधिक और भी अधिकार है। उन्हे एक्सचेंज के पल्ले इस प्रकार न पटक देना चाहिये। उनकी सहायता का और अच्छा सुगम सुस्पष्ट और नियमित द्वार होना चाहिये। आयात और निर्यात को नियमो के बन्धन मे डाल देना बड़ी भारी मूर्खताहै और सरकारको यह उपाय कदापि न करना चाहिये। अनेक विघ्न बाधाओं के होते हुए भी एक्सचेंज का सिद्धान्त अब तक वैसा ही गम्भीर और निश्चित है और आशा है वह वैसा ही बना रहेगा।

इसके उपरान्त दो एक बाते और कहनी हैं। एक तो यही है कि भारत में एक्सचेंज भाव भिन्न २ नगरो मे स्थिर नही हैं। यहा तक कि बम्बई में भी नहीं है। बम्बई में जब एक्सचेंज १८ शि ६–९–१६ पेस था तो मद्रास में १–६ पेंस था। दूसरे बी० सी० और ड्राफ्ट मे बहुत अन्तर है। और इससे कतिपय भारतीय बैंको का कुप्रबन्ध प्रकट होता है।

दस रुपये की गिन्नी।

सरकार ने गिन्नी का भाव १५) रु० के स्थान १०) रु० कर देने की घोषणा की है। हमारी दृष्टि से इतने दिन से निश्चित किये हुए इस रेट को तोडना ठीक नहीं है। श्रीयुत् दलाल ने राय दी है कि लोगों को गिन्नियोंमें जो घाटा हो उसे गवर्नमेन्ट दे।

पर अब इन अवस्था में लोगों को यह विश्वास होना कठिन है कि भविष्य में सरकार और सिक्कों के साथ ऐसा बर्ताव न करेगी। दस रुपये की गिन्नी से अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी दोनों दलों को हानि लाभ है पर अधिकांश में हानि भारतीय जनता के पल्ले पड़ी है। पाठकों के सुभीते के लिये हम इस विशय को और स्पष्टता से समझाने का प्रयत्न करते हैं, जिससे उन्हें विदित होगा कि दस रुपये की गिन्नी हो जाने से व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ने की सम्भावना है।

१—दस रुपये की गिनी से लाभ उठाने वाला दल—

(१) अंग्रेज नौकर

(२) अंग्रेज पूंजीपति

(३) इंग्लैंड के कारखाने वाले

(४) पदार्थों का प्रयोग करने वाली न कि उत्पन्न करने वाली भारतीय जनता।

२—हानि उठाने वाला दल—

(५) खेती का काम करने वाले कृषक लोग

(६) कच्चा माल भेजने वाले भारतीय व्यापारी

(७) कारखानों के मालिक तथा मेहनती मजदूर लोग

(८) नयी मिलो के खोलने वाले

१—लाभ उठाने वाला दल—

नहीं रखना चाहिये। जब तक एक्सचेंज
प्रकार की कृत्रिमता है तबतक वह निंदा
उद्योगों का इससे अधिक और भी अधिकार है
के पल्ले इस प्रकार न पटक देना चाहिये। उन
और अच्छा सुगम सुस्पष्ट और नियमित द्वार
आयात और निर्यात को नियमों के बन्धन में
भारी मूर्खताहै और सरकारको यह उपाय कदापि न
अनेक विघ्न बाधाओं के होते हुए भी एक्सचेंज का
तक वैसा ही गम्भीर और निश्चित है और आशा
ही बना रहेगा।

इसके उपरान्त दो एक बाते और कहनी हैं। ।
है कि भारत में एक्सचेंज भाव भिन्न २ नगरों में स्थि
यहा तक कि बम्बई में भी नहीं है। बम्बई में जब एक्स
शि ६—९—१६ पेंस था तो मद्रास में १—६ पेंस थ
बी० सी० और ड्राफ्ट में बहुत अन्तर है। और इससे
भारतीय बैंकों का कुप्रबन्ध प्रकट होता है।

दस रुपये की गिन्नी।

सरकार ने गिन्नी का भाव १५) रु० के स्थान १०) रु०
देने की घोषणा की है। हमारी दृष्टि से इतने दिन से नि
किये हुए इस रेट को तोड़ना ठीक नहीं है। श्रीयुत् दलाल
राय दी है कि लोगों को गिन्नियोंमें जो घाटा हो उसे गवर्नमेन्ट

(४) भारतीय जनता।—भारतीय जनता को यह लाभ है कि उसको विदेशीय कारखानों का माल ३३ फी सैकड़ा सस्ता मिलेगा और अन्न के बाहर जाने में रोक होने से अन्न भी बहुत मँहगा न हो सकेगा। यूरोप में भोज्य पदार्थ बहुत मँहगे हैं। दृष्टांत स्वरूप भिन्न २ देशों के भोज्य पदार्थों की कीमत का लेखा इस प्रकार है। इसमें आधार वर्ष १९१३ रखा गया है —

देश	लेखा	मास १९१९
फ्रांस	३३००	जून "
इटली	३२६६	अप्रैल "
जापान	२१४०	मई "
स्वीडन	३३९.०	अप्रैल "
इंग्लैंड	२५७.२	अगस्त "
अमेरिका	२०६.०	मई "

दस रुपये की गिन्नी हो जाने से एक रुपया स्वर्ण में २ शि और स्टार्लिंग में २ शि ६ पेंस के बराबर होता है। १९१३ में १०० पौंड की जो माल आता था उसका दस रुपये की गिन्नी होने से आजकल ८०० रु० दाम हुआ, परन्तु यदि १५) रु० की गिन्नी हो तो इसी का दाम १५.०० हुआ। इसी प्रकार १०) रु० की गिन्नी होने से भारत का कच्चा माल विदेश में भेजने वालों को (१५००)−८००)=७०० रुपयों का प्रति १०० गिन्नी पीछे नुकसान हुआ। यह तो मोटा हिसाब हुआ। यदि माल भेजने आदि का खर्च भी बीच में जोड़ लिया जाय तो भी ५५७) रुपये

१—**अंग्रेज नौकर**—दस रुपये की गिन्नी करने में वायसराय से लेकर छोटे से छोटे अंग्रेज का मासिक वेतन विनिमय की दर के कारण ड्यौढा हो जायगा। १५०० रु० मासिक वेतन पाने वाले अंग्रेजों को अब १०० गिन्नी (अर्थात् १५ रु०=१ गिन्नी) के स्थान पर १५०) गिन्नी (१५००/१०=१५० मिलेगी।

(२) **अंग्रेज पूजीपति**.— अंग्रेज नौकरो के सदृश ही भारत के पूजीपतियों का भी हित दश रुपये की गिन्नी में है। लड़ाई के दिनों मे जो धन उन्होंने कमाया उस धन को ये अब बड़ी आसानी के साथ इग्लैंड मे भेज सकते हैं। दस रुपये की गिन्नी से अब गिन्नी में उनकी आमदनी ड्यौढी हो जायगी। यदि वे अपना धन इग्लैंड की कम्पनियों में लगावें तो उन्हे उसमें ५० फी सैकडा अधिक धन मिलेगा।

(३) **इग्लैंड के कारखाने वाले**—इग्लैंड के मैन्चेस्टर पस्ले तथा अन्य व्यवसायिक जिलों का लाभ इसीमें है कि दस रुपये की गिन्नी हो जाय। क्योंकि इससे उनका माल अनायास ही भारत के अन्दर सस्ता बिकेगा। जो कपडा वे एक गिन्नी का भेजेंगे—अब वह १५) रु० के स्थान पर २०) रु० का ही बिकेगा। इससे उनके पदार्थों की मांग बढ़ेगी। हिन्दुस्तान के कारखाने उनका मुकाबिला न कर सकेंगे। क्योंकि विदेशियोकी चीजें अनायास ही सस्ती हो जायेंगी।

कर ही उन्होंने रद्दी से रद्दी जमीनों को जोत डाला है और जो चीजे अधिक महँगी थीं उन्हीं को बोया है। क्या अब, वे सहसा ही उन पदार्थों के भावों का गिरना पसंद कर सकते हैं? इतना ही नहीं, इसी महगी को आधार बनाकर सरकार ने अपने कर्मचारियों की तनख्वाहें ड्योढ़ी कर दी गई।

(६) कच्चा माल भेजने वाले भारतीय व्यापारी'— यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि १०) रु० की गिन्नी होने से विदेश मे कच्चा माल भेजना लाभ प्रद व्यवसाय न होगा विदेश मे कच्चा माल भेजने वाले व्यापारियो का कारोबार बंद हो जायेगा। भारत को यह काफी नुक्सान है। क्योंकि इन्हीं व्यापारियो के द्वारा ही भारत को विदेशियों का धन मिलता है।

(७) कारखाने के मालिक तथा मेहनती मजदूर लोगः— लड़ाई बंद होने के बाद भारतीय मेहनतियों तथा मजदूरोने अपना वेतन बढ़ा लिया है। कारखाने वालों को यह विशेष रूप से फला नहीं। क्योंकि विदेशी चीजों के महँगे होने से उनके कारखाने आमदनी पर चल रहे थे। दस रुपये की गिन्नी होते ही विदेशियों की चीजें ३३ फी सैकड़ा दाम में गिर जायेंगी। स्वदेशीय कारखाने विदेशीय कारखानों का मुकाबला करने मे असमर्थ हो जायेंगे। बहुतों को अपने कारखाने बंद करना पड़ेंगे। परिणाम इसका यह होगा कि मेहनती मजदूर लोग बेकार फिरेंगे।

से अधिक ही नुकसान बैठता है । स्वाभाविक बात है कि भारत का कच्चा माल विदेश में कम जायेगा और इसीलिये उपर लिखित देशों के सदृश ही भारत मे भोज्य तथा प्रयोग पदार्थों की कीमतें न चढ़ेगी । भारतीय जनता को जो कि पदार्थों को उत्पन्न कर प्रयोग ही करती है इससे विशेष लाभ है । भारत में ७० प्रति सैकडा लोग खेती का काम करते हैं । कृषिजन्य पदार्थों के सस्ते होने से उनके व्यवसायमे लाभ न रहेगा । अन्य लोग जो कि व्यवसायिक पदार्थों को बनाते हैं उनको भी इससे विशेष लाभ नहीं है । इस प्रकार लाभ केवल उन्हीं को है जो सरकार की नौकरी करते हैं या अन्य नैयमिक काम धन्धो मे नौकरी कर निर्वाह करते हैं ।

२ हानि उठाने वाला दल

(५) **खेती का काम करने वाले कृषक लोग**—लडाई के दिनों मे अनाज के महगे होने से पजाब के जिमिदारों ने बहुत अधिक धन कमाया । अनाज का मँहगा होना कुछ भी अच्छा नहीं है । परन्तु बिना मँहगी के कृषकों को सहारा नहीं रहा है । बगाल में स्थिर लगान नियत करते समय सरकार ने ६० फी सदी उत्पत्ति माल गुजारी मे ले ली थी । यदि महँगी न होती तो बगाली जिमीदार कभी के बरबाद हो जाते । दुख का विषय तो यह है कि सरकार मँहगी को स्थिर समझ कर रेल का किराया, राज्य कर तथा मालगुजारी बढाती जाती है । इस दशा में किसान लोगों के लिए सस्तापन कैसे हित कर हो सकता है । महँगी को देख

कर ही उन्होने रद्दी से रद्दी जमीनों को जोत डाला है और जो चीजे अधिक महँगी थीं उन्हीं को बोया है। क्या अब, वे सहसा ही उन पदार्थों के भावों का गिरना पसद कर सकते हैं? इतना ही नहीं, इसी महगी को आधार बनाकर सरकार ने अपने कर्मचारियों की तनख्वाहें ड्यौढ़ी कर दी गई।

(६) कच्चा माल भेजने वाले भारतीय व्यापारीः—यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि १०) रु० की गिन्नी होने से विदेश मे कच्चा माल भेजना लाभ प्रद व्यवसाय न होगा विदेश मे कच्चा माल भेजने वाले व्यापारियो का कारोबार बद हो जायेगा। भारत को यह काफी नुकसान है। क्योंकि इन्हीं व्यापारियों के द्वारा ही भारत को विदेशियों का धन मिलता है।

(७) कारखाने के मालिक तथा मेहनती मजदूर लोगः—लड़ाई बद होने के बाद भारतीय मेहनतियों तथा मजदूरोने अपना वेतन बढ़वा लिया है। कारखाने वालों को यह विशेष रूप से फला नहीं। क्योंकि विदेशी चीजों के महँगे होने से उनके कारखाने आमदनी पर चल रहे थे। दस रुपये की गिन्नी होते ही विदेशियों की चीजें ३३ फी सैकड़ा दाम में गिर जायेगी। स्वदेशीय कारखानें विदेशीय कारखानों का मुकाबला करने मे असमर्थ हो जायेंगे। बहुतों को अपने कारखानें बद करना पड़ेंगे। परिणाम इसका यह होगा कि मेहनती मजदूर लोग बेकार फिरेगे।

(८) नयी मिलों के खोलने वाले:—१०) रु० क
गिनी से जब पुरानी मिलों को भयकर धक्का पहुँचेगा तो नई मिल
का खुलना तो कोसों दूर हो जायेगा।

इस प्रकार एक्सचेंज की स्थिति इन दिनों अनिश्चित सी ह
रही है। सरकार ने भी अब एक्सचेंज को भाग्य पर छोड़ दिय
है। अधिकारियों का कथन है कि उनने ५ करोड़ के रिवर्स
कौनसलम् बेच कर एक्सचेंज स्थिर करने का प्रयत्न किया, किन्
उन्हे निराश होना पड़ा। ये पाँच करोड़ हिन्दुस्तान ने ७
करोड मे लिये थे। भारत सरकार ने धनी एंग्लो इण्डियनो
बैंकरों और पूजी वालो को आधी कीमत अर्थात् ७ रु० ८ आ०
प्रति सावरिन मे, भारत ने जिसके लिये १५) रु० दिये थे
मोल लेने के लिये आमन्त्रित किया। यह स्वीकार किया गया
और इसका जो कुछ परिणाम हुआ उसका वर्णन उस समय
इस प्रकार किया गया था—"सरकार ने ३५ पें० से भाव से
रिवर्स कौंसल बेंचकर यह परिणाम प्रकट किया कि लोग इस जबर-
दस्त भाव पर रुपया फेरने के लिये चिंतित हो उठे। इग्लैंड ने
भारत में ६ या ७ सौ करोड रुपये पूजी में लगाये हैं अतएव रुपया
फेरने के लिये इतनी उत्तेजना फैली है और इतनी अधिकता हो
रही है कि सरकार का पैर फिसल जाने का भय है।" किन्तु
यह जान कर हमें सतोष हुआ है कि सरकार ने अब अपनी भूल
स्वीकार कर ली है जिसके कारण कृषकों तथा रफ्तनी के व्या

पारियों की गहरी हानि के अतिरिक्त कोष को ८ ही महिने मे ३५ करोड़ का धक्का लगा ।

टकसालों का बंद होना ।

हम नहीं जानते कि लोग टकसालो के बद हो जाने से क्या तात्पर्य निकालते हैं । हमें भय है कि अंग्रेज और भारतीय भी इसके समझने में भूल कर रहे हैं । हम देखते हैं कि टकसाल बंद होने के एक वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १८९२ में आठ सहस्र अंग्रेजों और इतने ही शिक्षित भारतियों ने सरकार से टकसाल बंद करने के लिये कहा था, क्योंकि उनकी दृष्टि मे टकसाले बंद न होने से होमचार्जेज के कारण भारत का सर्वनाश हो जाता । कुछ समय हुआ श्रीयुत् बेच ने अपने एक लेख में लिखा था की एक्सचेंज की बढ़ती से भारत को होमचार्जेज देने मे बहुत रुपया बच रहेगा और भारतीय व्यापार में भी ३ शि० प्रति रुपया की अभिवृद्धि होगी । अर्थ सचिव श्रीयुत् हेली ने भी उस समय यही बात कही थी, और हमें विश्वास है कि हममे से अधिकांश लोग भी यही समझते है । एक्सचेंज का भाव चाहे १ शि० हो या ३ शि० अथवा चाहे जो हो उससे होमचार्जेज में कुछ भी बचत न होगी यही नहीं चाहे जो कारण हो यदि सोने के रूप में उसे देना हो तो उसमें भी अंतर न पड़ेगा । इस सम्बन्ध में हम श्रीयुत् गिफिन की सम्मति देदेना आवश्यक समझते हैं । श्रीयुत् गिफिन ने फ़ाउलर कमेटी के सम्मुख कहा

था — "जहा तक भारतीय जनता से सम्बन्ध है तब तक उनका द्रव्य चाहे कुछ हो लदन में देने के लिये सोना उतना ही है। सोने के ऋण के सम्बन्ध में, जैसा कि भारत को देना पडता है, क्या भारत की अथवा उस जैसे देश की अवस्था में उस देश के प्रति सम्बन्ध में कुछ अन्तर पड जाता है जहा सोने का सिक्का प्रचलित है? हम देखते हैं कि सरकार कुछ विचलित हो गई है पर द्रव्य के मूल्य में परिवर्तन हो जाने से क्या सरकार के ऊपर यह कुछ ज्यादा भार है? आस्ट्रेलिया का सोने का ऋण तो कहीं इससे अधिक है।"

विदेशीय स्वर्ण ऋण।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि एक्सचेंज की बढती से यह मानलेना, कि विदेशी ऋण सस्ते में चुक जायगा, भूल है। यदि हमें इग्लैंड को प्रति वर्ष २ करोड पौंड देना है तो हमें इग्लैंड या दूसरे स्थानों में उपज का एक अश भेजना पडेगा जिसके द्वारा २ करोड पौंड प्राप्त हो सकेंगे। इस मे हम सरकार की कुछ बचत देखते हैं पर यह बचत अप्रत्यक्ष कर की वृद्धि के कारण हुई है। रुपये की दर १ शि० ४ पें० निश्चित थी, सरकार ने २ शि० ११ पें० तक बढा दी अर्थात् पूर्णांक में २ शि० ८ पें० बढा दी। परिणाम क्या होगा? भारत का कर एकदम दूना हो गया!

विदेशी ग्राहक ।

मानलो कि उत्पादक को १ रु० जमीन का लगान देना पडता है। उसने विदेशी पैदावार का कुछ अंश बेंच दिया और अपना कर्ज अदा कर दिया जब कि रुपये की दर १ शि० ४ पें० थी। अब आप १ शि० ४ पें० के स्थान पर २ शि० ८ पें० ले लीजिये। २ शि० ८ पें० होते ही उसे पहले से दूना देना पडता है। आप कह सकते हैं कि वह उसे देना स्वीकार न करेगा। वह ऊंची दर के लिए बैठा रहेगा। पर वह बहुत समय तक ऐसा नहीं कर सकता। भारत के कपास के कौन दूने दाम देदेगा जब कि अमेरिका जैसे देशों के लोग अपने यहा अधिक उत्पादन द्वारा उसकी क़ीमत नियमित कर रहे हैं? अतएव विदेशी ग्राहक हमारा माल तो खरीदेगा नहीं और अन्य देशो से इच्छित वस्तु मोल लेलेगा। यह कहना व्यर्थ है, केवल दुराशा मात्र है कि हम चाहे जो कीमत ले सकते हैं। हमें अपनी कच्ची पैदावार पर जूट और चाय के सिवा और किसी पर सरक्षित अधिकार नहीं है। और तब भी कृषकों को बड़ा कठोर श्रम करना पड़ता है। इस का कोई उदाहरण देने के पूर्व हम एक सुप्रसिद्ध व्यापारी श्रीयुत् राली की सम्मति देते हैं। सन् १८९८ में करन्सी कमेटी के समुख उस के प्रश्न का उत्तर देते हुये श्रीयुत् राली ने कहा था कि एक्सचेंज की बढ़ती दर भारतीय कृषि और व्यापार की उन्नति में अवश्य बाधक होगी। उन ने स्पष्ट रूप से

कह दिया था कि यह मेरा विचार है और उसे कोई बदल नहीं सकता कि एक्सचेंज की ऊंची दर भारतीय कृषि और व्यापार की अवरोधक है। यह बात हमारी गवर्नमेंट को भी मालूम थी। उसने सन् १८६७ में एक गुप्त पत्र में भारत मन्त्री को लिखा था - —

"भारत के सच्चे हित के खयाल से यह आवश्यक है कि एक्सचेञ्ज को स्थिर करने के लिये १६ पेंस अधिक रुपये की कीमत न होनी चाहिये। यदि किसी प्रकार भी रुपये की दर इससे ऊँची हो जायेगी तो इससे विशेष भय की सम्भावना है।" फाउलर कमेटी की रिपोर्ट में इसका उल्लेख आपको मिलेगा। अब हमें निर्यात की दो मुख्य चीजों अर्थात् जूट और चाय के सम्बन्ध मे विचार करना चाहिये। जूट की पैदा पर बड़ी बुरी दशा रही है। उसके पैदा करने वालों की बड़ी दुरवस्था रही है। उनके पास भोजन तक नहीं। जूट के पैदा करने वालो की अवस्था बहुत बिगड गई है। गत् महा युद्ध के चार वर्षों में जूट मिलो को ५० करोड़ से अधिक लाभ हुआ। जिस मनुष्य ने सूत काता वह मर रहा है। यही अवस्था कपास पैदा करने वाले और कपास बुनने वाले की रही है। चाय के सम्बन्ध में देश की गिरी दशा आपको ज्ञात ही है। कागजातों के देखने से ज्ञात हुआ है कि जूट की उपज ३५ सैकड़ा कम होगई है और चाय वाले भी २० सैकड़ा अपना खर्च घटा रहे हैं।

चाय का उद्योग

इससे श्रीयुत् राली का यह सिद्धान्त सिद्ध होता है कि एक्सचेंज की ऊँची दर से व्यापार व कृषि में कमी होती है। कहा जा सकता है कि ऊँची दर से चाय का कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो पैदावार की अधिकता के कारण हानि उठा रही है। पर बात यह नहीं है। हम उदाहरण द्वारा इसे बतलायेंगे। मानलो कि एक किसान बगीचे में चाय की खेती करता है और उसे वह इग्लैंड तथा ससार के दूसरे देशों में बेंच कर २० प्रति सैकडा लाभ उठाता है। १ शि० ४ पें० प्रति रुपये के हिसाब से १०० पौंड की चाय बेंचता है और १५०० रु० पाता है जिससे उसे २० प्रति सैकडा का लाभ होता है।

अब हम एक्स चेंज को २ शि. ८ पेंस के हिसाब से मानेंगे। उस हिसाब से उस चायके १०० पौंड के ७५०) रु० ही मिलते हैं जो हानि है। यद्यपि चाय का सुरक्षित अधिकार है तथापि उसे उसकी कीमत बढाने के लिये अपने खर्च को कम करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ काल में वह सफल होगा किन्तु जहा वस्तुओं पर ऐसा सुरक्षित, अधिकार नहीं है वहा तो किसानका कुछ भी न बचेगा। सुरक्षित वस्तु की कठिनाइया कुछ वर्षों में दूर हो जाती हैं। किन्तु जहां ऐसा नहीं है वहा हमेशा के लिये रोना और झाँकना बदा है। टकसाल बन्द होने के बाद भारत वर्ष में दो सबसे बडे अकाल पडे, एक १८९७ में और

दूसरा १९०० में। किसान भूखों मर रहे थे और लाखों आदमी मर गये परन्तु सरकारी खजाना फिर भी लबा लब था। यह क्या ! यह उसी अदृष्य और अप्रत्यक्ष करके कारण । १८९५ मे रुपये की दर १५ पेंस थी और इससे ही आमदनी थी, परन्तु उस समय से रुपया १६ पेंस का करदिया अर्थात् १८ प्रति सैकड़ा कर बढादिया । भूखे किसानों के पेट काट कर खजाने भरे गये। सरकार भी यह बात जानती थी। इस सम्बन्ध मे फाउलर कमेटी के विवरण से एक प्रमाण दे देना उचित है। सर एस पी. मेकडालन जो अब लार्ड मेकडालन है और जो पहले उत्तर पश्चिमी प्रान्त के लेफिटेन्ट गवर्नर थे उनने १८९८ मे करन्सी कमेटी के एक प्रश्न के उत्तर में इस प्रकार कहा था—

"हा, यह ठीक है कि टकसाल बन्द कर देने का प्रभाव यह होगा कि टैक्स बढजायगा, क्योंकि रुपयों की तादाद तो उतनी ही रहेगी पर वस्तु कभी न बढेगी। किन्तु यह प्रभाव, असावधानी में डाला गया है लोग इसके लिये सचेत न थे। आपकहेंगे कि रुपये की दर १ शि० ४ पें० निश्चित करदेना सफलतादायक था। आयात और निर्यात बढा और कारखान बढे। यदि रुपया १६ पें० का कर देने से इतनी तरक्की हो सकती है तो रुपया दो शि० का कर देने से क्यों नहीं होती ! इसालिये कमेटी भारत की इस परिस्थिति को देखने के लिये जीवित थी और उसने ससार और प्रजा दोनों की इच्छाओं के अनुकूल कार्य करने का प्रयत्न किया। भारत सरकार का यह कहना

था कि टकसाल बन्द कर दी जायें और रुपये की दर १ शि० ६ पें० रहे क्योंकि उन्हें दिवाले का भय था। हरशल कमेटी ने रुपया १ शि० ४ पें० का निश्चित किया था, पर जब टकसाल बंद हुई तो रुपये की दर उस समय २ शि० ८ पें० थी। हरशल कमेटी ने रिपोर्ट के १३-५ वें फिकरे में लिखा है -- यह परिणाम निकालना सभव है कि टकसालो के रुपये की दर बढने के अभिप्राय से बदकरना विशेष आक्षेप योग्य है बनिस्बत इसके कि वे रुपये की कीमत घटाने के लिये बदकी जायें।

हरशल कमेटी इस कठिनतर कार्य करने के लिये बिठाई गई थी, उसे उसकी भयकरता ज्ञात थी किन्तु सरकार द्वारा विवश होनेपर उसे ऐसा करना पडा। उसने सरकार की इच्छानुसार १ शि० ६ पें० के स्थान पर १ शि० ४ पे० रुपये की दर करना स्वीकार किया। पर यह किस लिये ? यह सिर्फ एक्स चेंज को स्थिर करने के लिये था जिस पर ऐंग्लोइंडियन, सरकारी व्यापारी और बेंकरों का अधिकार था और जिसके बिना उनका स्थिति रहना असभव था। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट के ३४ वें वाक्य समूह में इस प्रकार लिखा है —

"सब बातों पर विचार कर हम यह परिणाम निकालते हैं कि व्यापार की स्थायित्व में अनिवार्य दशा की अपेक्षा विशेष सुविधा ही है। ऐसे अनेक उदाहरण पायेजाते हैं और भारत में स्वय ही ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं कि एक्सचेज के उतार चढाव से व्यापार में उन्नति हुई है और हो सकती है।"

चांदी की कीमत

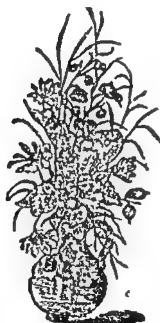
तव चादी की कीमत स्थिर करदेने के लिये क्यों कहा गया है ? जब चादी की कीमत बहुत बढगई थी जब ससार के सब देश एक प्रकार की भट्टी में पडे हुए थे जब ससार के किसी देश का एक्सचेंज स्थिर न था और जब अंग्रेजी पौंड के सोने का मूल्य केवल १३ शि० ६ पें० था उस समय एंग्लोइन्डियन सरकार, बेंकर और व्यापारी रुपये की कीमत स्थिर करदेने के पक्ष में थे। क्यों कि हमारी दृष्टि से और कुछ कारण न था केवल भारत को अधिक दरिद्री और मूर्ख बनाने के उद्देश्य से ही यह था। और इस प्रकार दर निश्चित करने के बहाने से ऊँची कीमत का लाभ उठाते हुये बेचारे किसान को २ शि० प्रति समय खोने के लिये बाध्यकरना था। सब ससार में उपज घट रही है और चादी की कीमत जो ११ फरवरी को ८९ ½ पें० थी अब ४४ पे० है। हम 'टाइम्स आफ इन्डिया' के व्यापारिक स्तभ से निम्न लिखित अश उद्धृत करते हैं — " लदन में चादी का भाव ४४ पें० गिर गया है जिससे रुपये की चादी के रूप में कीमत सिर्फ १ शि० ४३।८ पें० रह गई है। ११ फरवरी १९२० को चादी का भाव लदन में ८९ ½ पेंस हो गया था। जब कि स्टर्लिंग एक्सचेंज गत फरवरी मास में ऊँचा कर दिया गया था तो ससार का चादी का बाजार भारतीय मुद्रा की अधिक कीमत हो जाने से, निरन्तर क्रम के भय से उद्विग्न हो उठा था, और

यह कहने की आवश्यकता ही नहीं कि इस अवस्था से पूरा २ लाभ उठाने के लिये ही यह प्रबन्ध किया गया था। ज्योंही भारत सरकार ने एक्सचेंज की नीति बदली त्योंही लंदन में चांदी का भाव गिर गया। यह स्मरण रखना चाहिये कि ४४पें० चांदी का वर्तमान स्टर्लिंग भाव ३२ पें० सोने के बराबर है।"

केवल एक ही मार्ग।

सन् १८९३ के पूर्व सरकार चांदी की क़ीमत कम होने के कारण बड़ी विपत्ति में थी अब वह वस्तुओं के अधिक मूल्य के कारण विशेष चिंतित है। मानलो कि जब टकसालें खुली थीं और जब रुपये काम २३ पें० था तो अनाज का भाव १०० था। १८९५ में एक्सचेंज की दर १३ पें० होगई। अत अनाज का भाव ११४ होगया। १८९५ से १९१३ तक एक्सचेंज १६ पें० रहा और अनाज का भाव १८९ रहा इस प्रकार आप देखेंगे कि केवल १० पें० की कमी से कीमत १४ बढ़गई और सिर्फ ३ पें० की घटती से अर्थात् १८९५ में १३ पें० से १९१३ में १६ पें० होजाने से कीमत में ७५ की बढ़ती होगई। आप कहेंगे कि ससार भर में वस्तुओं का मूल्य बढ़जानेसे रुपये और सावरिन की मोल लेने की कीमत घट गई। यह ठीक है पर हम देखते हैं कि इग्लैंड में १८९५ और १९१३ के बीच में सावरिन का क्रय मूल्य २२ अंक से गिरा। युद्ध के पूर्व भारत में मूल्य की अधिकता का कारण भारत में भिन्न

मुद्रा के अधिक प्रचार से था जिसका सर जेम्स बेगवी ने विरोध किया था। सरकार के लिये अब केवल एक ही मार्ग है और वह यही है कि वह २ शि० की दर कम करदे, क्योंकि इसमें किसान बे मौत मर जायगें। इसके स्थान पर सरकार यदि १ शि० ३ पें० की दर रक्खे और यह कम से कम दर रहे अधिक से अधिक दर चांदी की दर के हिसाब से चाहे जो हो।



आठवां प्रकरण ।

कागजी सिक्का (Paper Money)

१ कागजी सिक्का क्या है ?



धारणतः धन कहने से लोगों को द्रव्य अथवा सोने चांदी के सिक्कों का ही बोध होता है। और वही मनुष्य अधिक धनी समझा जाता है जिसके पास अधिक सोना या चांदी हो। पर वास्तव में सोना और चांदी उसी प्रकार के धन नहीं हैं जैसे कि गेहूं, चावल, रुई या अन्य सर्व साधारण की उपयोगी वस्तुएं हैं। सोने और चांदी या इन के सिक्के तभी तक धन कहे जा सकते हैं तब तक उन से अन्य पदार्थ खरीदे जा सकते हैं। यदि उनके बदले हम अपने नित्य काम की वस्तुएं न पासकें तो सोना और चांदी मिट्टी तथा पत्थर से भी कम उपयोगी हैं। फिर प्रश्न यह होता है कि तब ये धन स्वरूप क्यों समझे जाते हैं और ये इतने सर्व प्रिय क्यों हैं ?

इस का कारण थोड़े शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य हर एक पदार्थ, जिसकी उसे आवश्यकता होती है, उचित रूप में उत्पन्न नहीं कर सकता। कोई अन्न

उत्पादन करने में लगा है तो कोई कपड़ा बुनने में, कोई जूता बनाने में और ऐसे ही अन्य प्रयोजन की वस्तुए बनाने में। पर अन्न, जूता, कपडा सभी के लिए आवश्यक वस्तुए हैं और कोई इनके विना नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में कठिनाई यह होती है कि एक मनुष्य को जिस चीज की आवश्यकता है उसके उत्पादन करने वाले को उसकी उत्पादन की हुई चीजों की उसी समय आवश्यकता नहीं होती। इससे बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं। मानलिया जाय कि चमार को अन्न की आवश्यकता है पर कृषक को जूते की नहीं वरन् कपड़े की आवश्यकता है। ऐसी दशा में चमार भूखों मर जायगा। इस प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये ही सोने और चादी का उपयोग होने लगा। जिन से प्रत्येक मनुष्य अपनी उपज बदलने के लिए राजी हुआ, और इस प्रकार सोने और चादी के सिक्कों से सभी वस्तुए खरीदी जाने लगीं और ये सर्वमान्य मूल्य मापक हो गये। चादी और विशेष कर सोना ही इस कार्य के लिए क्यों निश्चित किए गए, इसका वर्णन हम पहले अन्यत्र कर चुके हैं। यहा केवल यह जानलेना चाहिये कि थोड़े परिमाण में इनका मूल्य बहुत होता है और साथ ही इनके मूल्य में अस्थिरता अधिक नहीं होती।

सोना तथा चादी और विशेष कर इनके सिक्के क्रय विक्रय के कार्य में लाये जाते हैं। पर इनका परिमाण प्रत्येक देश मे परिमित है, क्योंकि इनकी उपज को बढ़ाना मनुष्याधीन नहीं

वरन् ईश्वराधीन है। परन्तु जिस प्रकार सभ्यता और जन सख्या बढ़ती जाती है, क्रय विक्रय का परिमाण भी बढ़ता जाता है और इसके लिए अधिक सिक्कों की आवश्यकता होती है। पर इस आवश्यकता को पूरी करने के लिए सोना या चांदी बढ़ाया नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त एक स्थान से किसी दूसरे स्थान में ले जाने के लिए इन धातुओं में खर्च की आवश्यकता होती है। जोखिम भी थोड़ी बहुत उठानी पड़ती है। इन्हीं कठिनाइयों को सोचना तथा देश में करन्सी की सख्या बढ़ाने के लिए बहुत अनुभव के बाद प्राय सभी सभ्य देशों में नोट अथवा कागज के सिक्के चलाये गये हैं।

कागजी सिक्के तीन प्रकार के होते हैं।

(१) प्रथम वे नोट जो वास्तव में सिक्के के प्रतिवाचक होते हैं, अर्थात् किसी बैंक या अन्यत्र रखे हुए द्रव्य की रसीद होते हैं। इस प्रकार के नोट में किसी प्रकार की असुविधा नहीं है और जब चाहें नोट के बदले में रुपया ले सकते हैं। एक तरह से तो ऐसे कागज के रुपयों और सिक्कों में तो कोई भेद नहीं है।

(२) "प्रतिज्ञात्मक" नोट वा हुडी जिनका आधार हुडी कर्ताका विश्वास और उसकी प्रतिष्ठा या साख है। इस प्रकार के नोट व्यापार में बहुत चलते हैं और इनका प्रचलित होना परस्पर परिचय और विश्वास पर होता है। यह बात

प्रसिद्ध हैकि ' जबान ही सोना है " और जिस मनुष्य के विषय मे यह कहावत सच हो उसकी हुडी चलना बिल्कुल उचित और न्याययुक्त ही प्रतीत होता है, क्योंकि उसकी साख में लोगों को भरोसा है

(३) तीसरे प्रकार के नोट वे हैं जिन्हे किसी देश की गवर्नमेन्ट चलाती है। वास्तव में ये नोट सोने या चादी के आधार पर नही होते और इसी लिये चलाये जाते हैं जिसमें ये सोने और चादी का न्यूनता को पूर्ण करें। यद्यपि उन पर "सौ रुपये के नोट 'पचास रुपये के नोट'" "इत्यादि शब्द लिखे रहते हैं, पर ये शब्द केवल भ्रमात्मक हैं इसके बदले में सोने और चादी के सिक्को के पाने की सभावना सर्वथा सिद्ध नहीं होती। सरकार की साख पर वे नोट चलाये जाते हैं। और विशेषकर इसी प्रकार के प्रचलित नोट का माप पेपर करन्सी है।

ऐसे नोटों का सोना या चादी का अधिकारपाना विचार विरुद्ध और असगत जान पडता है पर हर एक देश में अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि सर्व साधारण इस प्रकार के कागज के सिक्के को वही स्थान देते हैं और उसी प्रकार से काम में लाते है जैसे चादी और सोने के सिक्कों को। और ऐसा करना उचित भी है क्योंकि जब ये कागज के उजले या नीले टुकडे क्रय-विक्रय करने, ऋण चुकाने, कर देने या अन्य भिन्न कार्यों में उसी प्रकार आसकते हैं जैसे कि धातु के उजले तथा पीले सिक्के तो फिर इनका भी आदर उन्हीं सिक्कों के समान क्यों न हो!

लेकिन इन सब समानताओं के रहते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि नोट और रुपयों में गहरी असमानता है और रहेगी। नोट की कीमत रुपयों के मूल्य की अपेक्षा शीघ्र घट बढ़ सकती है। इनकी सीमा परिमित है और वे सिक्कों से अधिक परिवर्तन शील होते हैं।

(१) नोट का मूल्य अस्थायी नहीं हो सकता क्यों कि नोट की स्थिति और नाश गवर्नमेन्ट के आधीन है। यदि किसी देश की गवर्नमेन्ट नोटों को उठादे तो उनको ग्रहण कर्ताओं के हाथ में एक रद्दी कागज के अलावे और कुछ नहीं रह जायगा। विशेष कर क्रान्ति के समय या राज्य परिवर्तन होने पर ये नोट रद्दी कागज हो जाते हैं, क्योंकि इनका वास्तविक मूल्य कुछ नहीं है। इनका मूल्य कानून द्वारा निश्चित किया जा सकता है अतएव इनके मूल्य की घटी बढ़ी राज्यकी सत्ता व निर्बलता पर निर्भर है। पर सोने और चांदी के सिक्कों की यह अवस्था नहीं है, क्योंकि इनका वास्तविक मूल्य सब काल और सब देशों में लगभग समान ही रहता है। यदि कानून से सिक्के उठा दिये जायँ तो भी उनके सोना और चांदी का धातु मूल्य अवश्य रह जायगा।

(२) नोट का मूल्य परिमित सीमा के अन्तर्गत ही रहता है। यह कहा जा चुका है कि नोट का मूल्य क़ानून के आश्रित है और किसी देश के कानून उस देश के बाहर लागू नहीं होते अतएव एक देश का नोट दूसरे देश में नहीं चल सकता। जिस

मे अन्तर्जातीय व्यापार को क्षति पहुचा करती है। इसके प्रतिकूल सोना और चादी का मूल्य सभी सभ्य देशों में करीब २ समान रहने के कारण सिक्के अन्तर्जातीय व्यापार में काम आ सकते हैं। यद्यपि ये सिक्के के स्वरूप में नहीं लिए जा सकते परन्तु धातु के मूल्य पर से किसी को लेने देने में आपत्ति नहीं होती।

(३) अन्त में नोट का मूल्य बहुत शीघ्र घट बढ सकता है जिसके कारण व्यापार में बड़ी अशान्ति फैल सकती है। धातु के सिक्कों का घटना बढ़ना एक हद तक प्राकृतिक नियमों के आधार पर होने के कारण बहुधा इनका परिमाण और मूल्य स्थायी होता है। पर नोट का घटना बढ़ना बिल्कुल सरकार के आधीन है और एक लालची तथा अदूरदर्शी सरकार अधिक परिमाण में जब चाहे नोट निकाल सकती है जिसके कारण इनकी सख्या बहुत बढ जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि चीजों का मूल्य बढ जाया करता है और अनेक कठिनाइया उपस्थित होजाती हैं। यह सत्य है कि भू गर्भ में नई खानों के मिल जाने पर सोने और चादी का भी परिमाण भी कभी २ बढ जाता है जिस कारण इनका मूल्य भी कम हो जाता है। पर इनका व्यापार ससार-व्यापी होने के कारण इस घटाव या बढाव का भी कुछ प्रभाव नहीं पडता पर नोट के लिये यह नहीं कहा जा सकता। एक ही देश में परिमित रहने के कारण इनकी सख्या का घटाव बढाव इनके मूल्य को भी घटा बढा देते हैं। कभी २ तो ऐसा होता है कि

बाजार में चीजें दो दर पर बिकने लगती हैं। यदि वे रुपये से खरीदो तो कम दाम देना पड़ता है और नोट से खरीदो तो अधिक।

पूर्वोक्त बातों से यही प्रकट होता है कि कागज के रुपये अथवा नोटों में बहुत आपत्ति है तथा इनको व्यवहार में लाने में अनेक असुविधायें हैं। पर विचार कर देखा जाय तो संसार में ऐसी कम बातें या वस्तुए निकलेंगी जिनमें दोष न हो। पर इसके कारण उन वस्तुओं का सर्वथा त्याग कर देना संसार उचित नहीं समझता। और यदि करे भी तो अनेक कठिनाइयां सहनी पड़ेंगी। ऐसी अवस्था में उस चीज को छोड़ना नहीं बल्कि उसको सुगम और सुलभ बनाने का यत्न करना चाहिये। कागज के रुपयों में जो दिक्कत और असुविधायें हैं, यदि सभी राष्ट्र चाहें तो बहुत कम की जा सकती हैं। एक अन्तराष्ट्रीय संस्था द्वारा यदि केवल एकही प्रकार के नोट निकाले जायँ और हरएक देश के लोग उन्हें लेने को उद्यत हों तो किसी प्रकारकी झंझट न होगी। और न मनुष्यों को सोना और चांदीके लिए अपरिमित परिश्रम और धन व्यय करना पड़ेगा। प्राचीन समयमें ऐसा होना सम्भव नहीं था। पर आज विज्ञान के युगमें जब संसारके सभी देशोंमें परस्पर सम्बन्ध घनिष्ट होता जा रहा है तो एकही नोट का सर्वत्र प्रचार किया जाना असम्भव नहीं प्रतीत होता।

नोट मनुष्यकृत वस्तु है और सोना चांदी प्रकृति दत्त। अतएव इसकी महिमा और उपयोगिता नोट से अधिक है, ऐसा

कहना ठीक नहीं। इसके प्रतिकूल यह कहा जा सकता है कि मनुष्यकृत होने पर भी नोट सोने और चादी के रुपयो से क्रय विक्रय के काम मे लाने के लिए उतने ही अधिक उपयोगी हैं, जितनी कि मनुष्यकृत घडी प्रकृतिदत्त सूर्य्य से समय बताने मे है, और मनुष्यकृत मोटर प्रकृतिदत्त सवारी से है। सोना और चादी हमारे अधिकार में नहीं है अतएव हम अपनी आवश्यकतानुसार उनको घटा बढ़ा नहीं सकते। पर नोट हमारे आधीन होने से सावधानी के साथ हम उन्हे घटा बढा भी सकते है।

इसके अतिरिक्त पेपर करन्सी को काम में लाकर हम किसी देश की आर्थिक अवस्था सुधार सकते हैं। किसी देश की आर्थिक उन्नति उस देश के अन्तर्जातीय व्यापार पर निश्चित होती है। पर अन्तर्जातीय व्यापार के लिए सोने और चादी के व्यापार की आवश्यकता होती है। और जबतक हम इनका परिमाण बढा नहीं सकते, हम देश के व्यापार की भी वृद्धि नहीं कर सकते। पर यह बात स्पष्ट है, कि अनेक इच्छा करने पर भी हम सोने और चादी की उपज नहीं बढ़ा सकते। इसके बढ़ाने का केवल एकमात्र उपाय यह है कि ये द्रव्य देशमे स्थायी कार्यों के लिए अधिक परिमाण में लगाय जायँ यदि हम देश के अन्तर्गत नोट से काम ले और इस प्रकार उनका व्यवहार कर सोने चादी की बचत कर अन्तर्जातीय व्यवहार करे तो बहुत लाभ हो सकताहै। इसी बात की उपयोगिता प्रकट करते हुए प्रसिद्ध

अर्थ शास्त्रज्ञ एडम स्मिथने कहा है, "धातु के सिक्के जो देशके भीतर व्यवहार में लाए जाते हैं वे निरर्थक पूजी हो जाते हैं, यदि इनकी जगह हम देश के भीतर नोटों से काम लें तो देश का सभी सोना और चांदी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लगा सकते हैं और इस प्रकार देशकी आर्थिक दशा सुधारी जा सकती है। नोटो की उपमा देशकी सड़कों से दी जाती है। यदि हम वायु मण्डल पर कोई चलने का मार्ग पा लें तो ये सड़कें उपजाऊ बनाई जा सकती हैं और इस प्रकार देशकी उपज बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है।

हमारे पाठकों ने कागजी सिक्के के मुख्य तत्व को भली भाँति समझ लिया होगा। इसके उपरान्त हम कागज के सिक्कों के इतिहास उनके संगठन उनकी व्यापकता तथा अन्य समस्याओं का विवेचन करेंगे। सबसे पहले इतिहास की ओर दृष्टि डालिए।

३—इतिहास।

पेपर करन्सी के इतिहास का आरंभ १८३९–१८४३ से होता है, जब कि प्रान्तीय बैंकों को नोट चलाने की आज्ञा दी गई थी। ये नोट लीगल टेंडर न थे और उनका उपयोग उन्हीं व्यापारिक केन्द्रों में किया जाता था, जहा ज्यादा तादाद में अदायगी के लिए धातु के स्थान में अन्य सिक्के की आवश्यकता होती थी। गदर के बाद भारत सरकार की आर्थिक अवस्था के

निरीक्षण और सुधारके लिए एक स्पेशल फाइनेन्स मेम्बर की नियुक्ति हुई। अर्थ सचिव श्रीयुत् जेम्स विलसन के अर्थ सम्बन्धी कार्यों मे सबसे पहला काम नोटों का प्रचलन करना और उनकी व्यापकता को बढाना है। यद्यपि उन नोटों का अत्याधिक प्रचलन न हुआ तथापि वे जानते थे कि इसका कारण इन नोटो का सिर्फ लीगलटेंडर न होना ही है। लीगल बनानें के लिए जनता का विश्वास नोट सरकारना तथा एक कोष की आवश्यकता आदि कई बातें की जाने को थीं। बैंकों द्वारा चलाए गए इन नोटों के लिए कोई अच्छा काम न था, क्योंकि उन्हें आवश्यकता के अतिरिक्त २५ प्रति सैकड़ा का सयुक्त कोष रखना पड़ता था। विद्रोह के पश्चात् विलसन ने नोटोंको केन्द्रीभूत करने और उन्हें जनता का (Monopoly)हक बनाने का विचार किया। यह केवल इसी लाभ से नहीं कि पूंजी गत कोष मे व्याज का रुपया बचाना बल्कि इस-लिए भी कि उन्हें जतना का विश्वास पात्र बनकर नोटो की व्यापकता बढ़ाने की अतीत आवश्यकता थी। इन नोटों के प्रसार के लिए जिस विश्वास की आवश्यकता थी उसे कोई भी सस्था यहा तक कि अच्छा से अच्छा बैंक भी नहीं पैदा कर सकता था। और यह तो प्रत्यक्ष ही था कि नोट प्रचलन का नफा स्टेट लेती, जो इस प्रकार का टैक्स था व जो नोटों के रूप में जनता पर लगाया गया था।

मि० विलसन और उनके साथी तथा सर चार्ल्सवुड, तत्कालीन भारतमन्त्री, भारतीय नोट प्रचलन को जनता का (Monopoly) हक्क बनादेने के लिए पूर्णत सहमत थे, किन्तु वे उसी दृष्टिकोण से कोष की आवश्यकता को न देखसके। बुलियन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो जाने के पश्चात् इग्लैंड में अधिकारी वर्ग पेपर करन्सी के प्रतिरोध का स्मरण रखते हुए कोई ऐसा प्रबन्ध न कर सका जिस पर १८४४ का बैंक एक्ट लागू न होता हो। वे प्रत्येक नोट के लिए उतने ही परिमाण की नकद मुद्राए रखना चाहते थे।

अन्तत: हिन्दुस्तान और इग्लैड के अधिकारियों में परस्पर समझौता हो गया और १८६१ मे पेपर करन्सी एक्ट पास हो गया, जिसके अनुसार इस पर लागू होने वाले सब कानून रद हो गए और एक बिल्कुल नई पद्धति का प्रारभ हुआ। इस पद्धति की मुख्य बातें ये थीं —

१—करन्सी नोट अपने २ प्रचलन केन्द्रों में अपरिमित सख्या में लीगलटेंडर बना दिये गये और वे गवर्नमेन्ट द्वारा (Exclusively) केवल चलाए जाते थे।

२—प्रत्येक केन्द्र के हेड क्वार्टर में ये प्रतिज्ञात्मक नोट भुनाए जा सकते थे। एक सीमा के नोट दूसरी सीमा में चालू न थे। हाँ, सरकारी ऋण चाहे जिस सीमा में से दिया जा सकता था। इसी प्रकार रेलवे कम्पनिया भी प्रत्येक सीमा के नोट अपने

किराये वगैरा में ले सकती थीं और उनके बदले मे सरकार से नकद रुपये ले सकती थीं। यदि जनता के ट्रेजरी मे अच्छे परिमाण मे रुपया होता तो वह भी प्रत्येक स्थान के नोट ले सकती थी। इस प्रकार के कुल चार केन्द्र थे—१ कलकत्ता २ बम्बई ३ मद्रास और ४ रगून और ४ उपकेन्द्र थे यथा —कानपुर,लाहौर, कराची और कालीकट। सन् १९१०के एक्टके अनुसार ये उपकेन्द्र उठा दिए गए, और अब कुल मिला कर ७ ऐसे स्थल हैं। इस प्रकार इस दृष्टि से देश को कई भागों में विभक्त करना विरोधात्मक है, क्योंकि इस प्रकार केन्द्री. भूत प्रचार से नोट व्यापक नहीं हो सकते थे और न धातुमुद्रा-कोष का प्रश्न कोई भारी प्रश्न रह जाता था। इसके विरुद्ध हिन्दुस्तान में नोट का प्रचलन एक नई बात थी। गदर के पश्चात् सरकार की साख भयपूर्ण थी। वर्ष के भिन्न २ अवसरों पर हिन्दुस्तान के भिन्न २ स्थानों में नकद रुपयों की माग भी भिन्न थी। अतएव यही उचित था कि नोट भुनाने के लिए पूर्ण सुविधायें देकर उन्हे इतना व्यापक बनाया जाय कि उनकी मात्र व्यापकता ही राज्य की साख बढ़ाने वाली होजाय। तथापि जब कि नोट की गहरी नींव जनता के गहरे विश्वास पर डाली गई थी, जब कि लोग नोटों को तत्काल भुनाने की अपेक्षा उन्हें अन्यकार्यों में उपयोग करना सीख गये थे तब प्रणाली को परि[illegible] ने का उपयु[illegible] समय था। जैसा कि हम देखेंगे यही [illegible] कानू[illegible] पास होने के ठीक ५० वर्ष बाद हुई [illegible] इस

अवकाश में नोटों का अधिक प्रमार न हुआ, पद्धति के कर्ताओं के लिए दोष देने वाली नहीं हो सकती।

(३) पहले पहल १०,२०,५०,१००,५०० और १००० तक के नोट चलाये गये थे। लोगों की दरिद्रता और उनके साधारण लेन देन को देखते हुए तत्कालीन पौंड के रूपमें रुपये की कीमत के अनुसार सब से छोटा नोट २० शि० का आवश्यक था। सन् १८७१ मे पाँच रुपय का नोट चलाया गया और इसके बाद दस हजार रुपये का नोट चलाया गया। सन् १९०३ पाँच रुपये का नोट एक बर्मा को छोड कर सर्वत्र चालू सिक्का कर दिया गया। सन् १९१० के एक्ट के अनुसार २० रु का नोट बद कर दिया गया और तब ५० और १० रु के नोट सर्वत्र चालू कर दिये गए अर्थात् वे प्रत्येक स्थान में चल सकते थे। और भारत सरकार को अधिकार दिया गया कि वह और अधिक मूल्य के नोट सर्वत्र-चालू-सिक्के बनादे। इसी अधिकार के अनुसार सन् १९११ में १०० सौ रुपये का नोट सर्वत्र-प्रचलित होगया। सन् १९१० के एक्टके अनुसार बर्मा में भी पाच रुपये का नोट चलने लगा। सन् १९११ में सरकार ने अधिक मूल्य के नोटों को उनके प्रचलन-केन्द्र के अतिरिक्त अन्यस्थलों में सरकारी ऋण, रेल, बन्दर और तार घर आदि में लेना बन्दकर दिया।

(४) करन्सी नोटों का कुल द्रव्य परिमाण करन्सी तथा भारत तथा विलायत सरकार की हुडियों से सरक्षित है। पहले इस कोष में केवल चादी ही रहती थी पर

किराये वगैरा में ले सकती थीं और उनके बदले मे सरकार से नकद रुपये ले सकती थीं। यदि जनता के ट्रेजरी मे अच्छे परिमाण मे रुपया होता तो वह भी प्रत्येक स्थान के नोट ले सकती थी। इस प्रकार के कुल चार केन्द्र थे—१ कलकत्ता २ बम्बई ३ मद्रास और ४ रगून और ४ उपकेन्द्र थे यथा —कानपुर, लाहौर, कराची और कालीकट। सन् १९१०के एक्टके अनुसार ये उपकेन्द्र उठा दिए गए, और अब कुल मिला कर ७ ऐसे स्थल हैं। इस प्रकार इस दृष्टि से देश को कई भागो मे विभक्त करना विरोधात्मक है, क्योंकि इस प्रकार केन्द्री भूत प्रचार से नोट व्यापक नहीं हो सकते थे और न धातुमुद्रा-कोष का प्रश्न कोई भारी प्रश्न रह जाता था। इसके विरुद्ध हिन्दुस्तान में नोट का प्रचलन एक नई बात थी। गदर के पश्चात् सरकार की साख भयपूर्ण थी। वर्ष के भिन्न २ अवसरों पर हिन्दुस्तान के भिन्न २ स्थानों में नकद रुपयों की माग भी भिन्न थीं। अतएव यही उचित था कि नोट भुनाने के लिए पूर्ण सुविधायें देकर उन्हे इतना व्यापक बनाया जाय कि उनकी मात्र व्यापकता ही राज्य की साख बढ़ाने वाली होजाय। तथापि जब कि नोट की गहरी नींव जनता के गहरे विश्वास पर डाली गई थी, जब कि लोग नोटों को तत्काल भुनाने की अपेक्षा उन्हें अन्यकार्यों में उपयोग करना सीख गये थे तब प्रणाली को परिवर्तित करने का उपयुक्त समय था। जैसा कि हम देखेंगे यही बात पहले करन्सी कानून के पास होने के ठीक ५० वर्ष बाद हुई और यह बात कि इस सम्बे

अवकाश मे नोटों का अधिक प्रसार न हुआ, पद्धति के कर्ताओं के लिए दोष देने वाली नहीं हो सकती।

(३) पहले पहल १०,२०,५०,१००,५०० और १००० तक के नोट चलाये गये थे। लोगो की दरिद्रता और उनके साधारण लेन देन को देखते हुए तत्कालीन पौंड के रूपमे रुपये की कीमत के अनुसार सब से छोटा नोट २० शि० का आवश्यक था। सन् १८७१ मे पाँच रुपय का नोट चलाया गया और इसके बाद दस हजार रुपये का नोट चलाया गया। सन् १९०३ पाँच रुपये का नोट एक बर्मा को छोड़ कर सर्वत्र चालू सिक्का कर दिया गया। सन् १९१० के एक्ट के अनुसार २० रु० का नोट बद कर दिया गया और तब ५० और १० रु० के नोट सर्वत्र चालू कर दिये गए अर्थात् वे प्रत्येक स्थान में चल सकते थे। और भारत सरकार को अधिकार दिया गया कि वह और अधिक मूल्य के नोट सर्वत्र-चालू-सिक्के बनादे। इसी अधिकार के अनुसार सन् १९११ में १०० सौ रुपये का नोट सर्वत्र-प्रचलित होगया। सन् १९१० के एक्टके अनुसार बर्मा में भी पाच रुपये का नोट चलने लगा। सन् १९११ में सरकार ने अधिक मूल्य के नोटों को उनके प्रचलन-केन्द्र के अतिरिक्त अन्यस्थलों में सरकारी ऋण, रेल, बन्दर और तार घर आदि में लेना बदकर दिया।

(४) करन्सी नोटों का कुल द्रव्य परिमाण करन्सी तथा भारत तथा विलायत सरकार की हुडियों से सरक्षित है। पहले इस कोष में केवल चादी ही रहती थी पर

मन् १८९३ मे जब नीति पुनर्निर्धारित की गई और रुपये का मूल्य पौंड के अनुसार निश्चित किया गया तब से कोष में सोना और चांदी दोनो रखी जाने लगीं। कोष में कुल द्रव्य ४ करोड था पर जैसे २ नोट बढते गये द्रव्य का परिमाण भी छः करोड हो गया। किन्तु फिर भी नोटों का प्रचलन बढ़ता ही गया। अत में सन्१८९० के चोथे ऐक्ट के अनुसार उस द्रव्य को ८ करोड तक बढ़ा देने का अधिकार दिया गया। फिर १८९६ में ऐक्ट २१ के अनुसार ये १० करोड रुपये हो गये, किन्तु सन्१९०५के३ रे ऐक्ट के अनुसार २ करोड की रकम और जोड दी गई यह रमक भारत सचिव द्वारा एक्सचेकर बॉड और कौन्सल के रूप मे दी गई। सन् १९०८—९ में इन बौंडों के स्थान पर कौन्सल कर दिये गये। सन् १९११ के ७ वे ऐक्ट के अनुसार और दो करोड का रकम बढ़ाई गई जिसे भारत सचिव ने और दो करोड के कौन्सल के रूप में देदी। इस प्रकार महायुद्ध के ठीक पूर्व यह रकम १४ करोड हो गई थी इनमे से केवल ४ करोड हुडियो के रूप में थे। धातु के सिक्कों के सम्बन्ध में उन्हे सोने के रूप मे या चांदी की सिल के रूप में अस्थाई प्रकार से इग्लेंड में रखे जाने का निश्चय हुआ। इस का उद्देश्य हिन्दुस्तान को आपत्तिकाल मे सहायता पहुँचाना ही था। सन् १९०५ के ऐक्ट के अनुसार यह अधिकार दिया गया कि कुल कोष धातु के सिक्कों के रूप मे रखा जाय और वह चाहे इग्लैंड मे रहे या हिन्दुस्तान में अथवा थोडा २ दोनो जगह रहे। इसके साथ ही सोने के सिक्के या उसकी सिल तथा

चादी के सिक्के और चादी की सिल भी रखी जा सकती थी, पर शर्त यह थी कि चादी के सब सिक्के हिन्दुस्तान में ही रखे जाये। इसके अनुसार लंदन मे एक पेपर करन्सी चेस्ट सन्दूक (Chest) रखी गई। ६,०००,००० पौंड मूल्य का सोना हिन्दुस्तान मे वहा रखने के लिये भेजा गया। भारत सचिवकी ओरके द्रव्य-अवशेष से और १,०४५,००० पौंड वहां ट्रासफर कर दिये गये। इस सोने का परिमाण क्रमश बढने लगा और महायुद्ध के एक वर्ष पूर्व ३१ मार्च सन् १९१३ मे कुल कोष का द्रव्य इस प्रकार विभक्त था —

	करोड़ो रुपयो मे
भारत में चादी	१६ ४५ रु०
” ” सोना	२१ २७
लदन में ”	१ ५
हुडिया	१४ ००
कुल	६८ ९७ रु०

४—पेपर करन्सी के दफ्तर का सगठन।

भारत में पेपर-करन्सी की समस्या पर और विचार करने के पूर्व यह जान लेना चाहिये नोटों के प्रचलन का प्रबन्ध

एक पेपर करन्सी डिपार्टमेन्ट (दफ्तर) द्वारा होताहै। जिसका कर्त्तव्य है कि वह रुपया अट्ठन्नी और सावरिन के बदले में नोट चलाय। सोने की सिल और सोने के सिक्कों के बदले में भी नोट चलाये जा सकते हैं पर यह कण्ट्रोलर खास की अनुमति से होना चाहिये। नोट भारत सचिव द्वारा इग्लैंड बैंक से दिये जाते है। पश्चात् हेड कमिश्नर द्वारा यहा देश में करन्सी एजटो को नोट दिये जाते हैं। सर्वत्र प्रचलित नोट को छोड़कर प्रत्येक नोट पर जहा से वह चलाया गया है उस केन्द्र का नाम देता है साथही प्रत्येक नोट पर हेड कमिश्नर, कमिश्नर या डिप्टी कमिश्नर के हस्ताक्षर होते है।

५–पेपर करन्सी की समस्याएं।

(अ) नोटों की व्यापकता।

पेपर करन्सी एक्ट को पास हुए ५० वर्ष से अधिक होगये और सिक्के उसी रूप को चले। ८० वर्ष से अधिक होगये फिर भी जैसी आशा थी वह न होते हुए भी सन् १८६२ मे प्रचलित नोटों का कुल द्रव्य परिमाण ३६९ लाख रुपये था। ३० वर्ष बाद वह २७१० लाख रुपये था और उस के पश्चात् उन्नति इस प्रकार हुई —

करोड़ों रुपयों में प्रचलन का औसत।

वर्ष	(Gross)	(Net)	Active
१८९२–९३	२७ १०	२३ ३३	१९ ५३
१८९३–९४	२८ २९	२० ८३	१७ ८५
१८९९–१९००	२७ ९६	२३ ६७	२१ २७
१९००–०१	२८ ८८	२४ ७३	२२ ०५
१९०२–०३	३३ ७४	२७ ३५	२३ ४९
१९०४–०५	३९ २०	३२ ७६	२८ ११
१९०६–०७	४५ १४	३२ ४९	३३ ९३
१९०८–०९	४४ ५२	३९ ०२	३३ १०
१८०९–१०	४९ ६६	४५ ३५	३७ २१
१९१०–११	५४ ३५	४६ ४८	३८ ७५
१९११–१२	५७ ३७	४९ ४९	४१ ८९
१९१२–१३	६५ ६२	५४ ९२	४५ ३९
१९१३–१४	६५ ५५	५५ ६२	४६ ६३
१९१४–१५	६४ ०४	५९ २८	४५ ४३
१९१५–१६	६४ १०	६० ३९	४८ ०८

३१ मार्च सन् १९१४ के दिन चलार गए कुल नोटों का मूल्य परिमाण ६६ करोड रुपया था। भारतवर्ष में उसकी मुद्रा-प्रणाली अवृद्धिशील होने के कारण, नोटों के प्रचलन की उन्नति की आवश्यकता जान पडती है। नये कानून के अनुसार नये नोट तब तक नहीं चलाये जा सकते जब तक कि कोष में उतना ही नक्द द्रव्य न हो। यद्यपि कोषगत द्रव्य गत महा युद्ध के पूर्व

बहुत कुछ बढ़ा दिया गया था और यद्यपि कुल प्रचलित द्रव्य परिमाण ८३, ४०,१७ ५७० रु० था तथापि इसमें नोटों का भाग कुल का ३/५ ही है। इसके अतिरिक्त भारत वासी अभी तक चेक पद्धति (Cheque System) से परिचित नहीं है जिसने इग्लैंड की अवृद्धिशील मुद्रा पद्धति को दबादिया और न हम यही आशा करते हैं कि निकट भविष्य में बड़ी २ रकमों को जमा करने के लिए लोग चेक प्रणाली का अनुसरण करेंगे। ऐसेही अवसर मे हिन्दुस्तान का व्यापार बढ़ रहा है। सन् १९१३--१४ में ही विदेशी समुद्री व्यापार २२ ५९ (१८७५--७६) से ४०८ ८३ करोड़ रुपयों का होगया। यदि हम इस में अन्तर्देशीय लेन देन की रकम भी सम्मिलित करलें तो फिर कहना ही क्या? ऐसी दशा में जब कि व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, लोग एक ऐसे विनिमय माध्यम के अभाव का अनुभव करेंगे, जो समयनुसार सरलता पूर्वक वृद्धिगत किया जा सकता हैं।

इस आवश्यक सुधार के लियेनाना प्रकार की बातें सुझायी गई हैं। चेम्बरलेन कमीशन ने लिखा है, "हम इसे यथोचित समझते है कि हिन्दुस्तान में नोटों की उन्नति प्रत्येक न्याययुक्त उपाय से की जाय। इस उद्देश्य की दृष्टि में रखते हुए हम सरकार से सिफारिश करते हैं कि वह जहा पर जिस प्रकार सभव हो उन स्थानों को बढ़ाये जहा नोट भुनाए जा सकते हैं साथ चलन के सिक्कों की बहिर्गत सुविधाओं का भी प्रयत्न करे।

हमारी सम्मति मे तो यह उचित होगा कि ५०० रु० के नोट सर्वत्र-प्रचलन गत बना दिये जाय। अनुभव से हम कह सकते है कि इससे भी अधिक परिमाण के नोट सर्व-गत किये जा सकते हैं।" इस सम्बन्ध में यदि कोई प्रतिरोध ह तो वह यही कि ऐसा करने पर सरकार नक़द द्रव्य का उतना ही कोप बढ़ाना पडेगा साथ ही उसे एक ज़िले से दूसरे मे भेजने में बहुत व्यय करना पड़ेगा। किन्तु हमारी समझ से तो सरकार को इस प्रकार कोप बढाने की कोई आवश्यकता नहीं। इस सुधार से व्यापारी समुदाय को बहुत सुविधा होगी और नोटो का अधिक प्रचलन इतर व्ययों से कहीं अधिक न पड़ेगा।

दूसरे प्रस्ताव के विषय में, जिसमे जनता के ध्यान को आकर्षित किया है और जिसे अर्थ सचिवने बाहृत स्वीकार भी कर भी कर लिया ह, येही बाते नहीं कही जा सकतीं। भारतवर्ष की दरिद्रता को ध्यान में रखते हुए साथ ही लोगों के लेन देनके द्रव्य को बहुत ही क्षुद्र परिमाण देखते हुए यह कहा जाता है कि कमसे कम रुपयों के नोट भी हिन्दुस्तान के लिये सर्व गत सिक्के बनाये जाने योग्य नहीं है। और इसके लिये फ्रास का उदाहरण दिया जाता है कि वहा शान्ति के समय मे भी ५ फ्रैंक यानी ३ रु० के काम से कम नोट प्रचलित थे। फ्रास के लोग भारत से अधिक धनी हैं और उनके लेन देन के द्रव्य की सख्या अधिक है पर वहा भी युद्ध काल में १ फ्रैंक यानी १० आने के नोट चलाये गये

थे। ऐसे नोटों का प्रचलन तभी आवश्यक होगा जब उनका उद्देश्य धातु के सिक्कों की किफायत करना होगा, विशेष कर उस अवस्था में जब कि युद्ध-काल हो। रूस-जापान युद्ध के समय जापान ने १० सेन्ट के नोट चलाये थे। भारत में भी जब ऐसी व्यापारिक चिन्तनीय स्थिति आ पड़ी तो अर्थ सचिव को एक रुपये और ढाई रुपये का नोट चलाना पड़ा। एक रुपये के नोट के विरुद्ध अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं तथापि हम केवल इतना ही कहेंगे कि बिल्कुल अनिवार्य अवस्था को छोड़ कर अन्य देशों में हिन्दुस्तान मे और देशों का अधा अनुकरण कर एक १ रुपयेके नोट चला देना ठीक नहीं। हिन्दुस्तानी १ रुपये के नोट की अपेक्षा एक रुपया ज्यादा पसद करेंगे। इसके विरुद्ध सरकार को चाहिये कि बह ५,००, १०००, १००००, तक के नोटों को सर्वत्र-प्रचलित बनादे और उनके बदल में रुपयों के मिलने और इसी प्रकार रुपयों के बदले में नोटों के मिलने का प्रबन्ध करे तो अच्छा है।

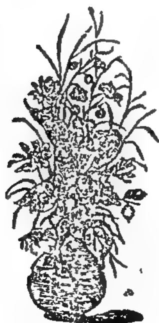
२—मुद्रा कोष।

हम इस कोष का युद्ध के पूर्व तक का इतिहास पहले ही लिख चुके हैं और यह भी दिखला चुके हैं कि उसमें दो मुख्य भाग होते हैं, धातुकोष और हुंडिया जिनमें से प्रत्येक भाग प्रथम सोना और चादी व दूसरा रुपये और पौंडों के रुपये उपविभागों में विभक्त है। ३१ मार्च १९१४ को कोष गत द्रव्य इस प्रकार विभक्त था.—

रुपये	२०, ५३
लदन में सोने के सिक्के और सिल	६, १५
भारत में , ,,	२२, ४४
लदन में हुडियाँ	४, ००
हिन्दुस्तान मे ,,	१०,००
कुल	— ६११२

इस कोष के निर्माण और स्थान के विषय में बहुत विवाद प्रचलित है। चेम्बरलेन कमीशन ने इस विषय में जो कुछ कहा है वह इस योग्य है भी नहीं कि उससे यह आलोचना कर सके। पहले धातु-मुद्रा-कोष को ही लीजिये, इसकी स्थापना जिस उद्देश्य से की गई थी अब उसका उपयोग किसी दूसरे प्रकार मे और दूसरे ही कामों मे किया जाता है। इस कोष का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह नोटो के बदले में रुपये दे। चेम्बरलेन कमीशन ने कहा है कि भारत में कोष में सोना रखना बिल्कुल व्यर्थ है क्यो कि यहा स्वर्ण-मुद्रा-पद्धति न होने के कारण लोग रुपये ही लेंगे। पर हम समझते हैं कि यदि लोग नोटों के बदले मे रुपये ही लें तो सोना रखना व्यर्थ है। कोष की शक्ति सवर्धन के लिए सोने की बड़ी आवश्यकता है। सोने का अधिकाश इग्लैंड भेज देना कि उससे भारत में सिक्कों के लिए चादी ली जा सके कदापि न्यायानुमोदित नहीं है। दूसरे जो यह कोष हिन्दुस्तान में न रख इग्लैंड में रखा जाता है बड़ी ही कुटिलता

है। कहा जाता कि इसे वहा रखने का उद्देश्य यह है कि इग्लैंड के बाजार की स्थिति ठीक रहे। यह तो भारत के साथ सरासर छल करना है, भारत को ससार के स्वर्ण के अपने भाग से वचित रखना है। कुछ भी धातु-मुद्रा-कोष चाहे समुचित हो या न हो यह तो स्पष्ट है कि कागज के सिक्के का कोष अपने लक्ष्य से न्यून हुए बिना विनिमय को स्थिर रखने के काम मे नहीं लाया जा सकता।



९ वां प्रकरण

भारत में सोने के सिक्के की आवश्यकता ।



भारत में सिक्कों के प्रारंभिक काल में प्रधान सिक्का चाहे जो रहा हो पर यह बात तो इतिहास सिद्ध है कि सन् १८३५ में प्रणाली के सगठन से तथा कम्पनी के राज्य में सर्वत्र सगठित रुपये के प्रचार काल से किसी न किसी रूप में भारत में सोने के सिक्कों के सम्बन्धमें आन्दोलन होता रहाहै। सन १८३५ की क्रान्ति के उपरान्त—जब सरकार ने सोने के सिक्के को चलता सिक्का मानने से इन्कार कर दिया—ये सोने के सिक्के इतने अधिक परिमाण में प्रचलित थे कि सरकार को उनकी स्थापना के ६ वर्ष पूर्व ही अपना बन्धन उठा लेना पड़ा। सन् १८५२ में आस्ट्रेलिया और केलिफोर्निया की सोने की खानों के निकल आने से सोने की अधिक अभिवृद्धि के कारण उसकी कीमत गिर जाने के भय से लार्डडलहौसी की सरकार ने कम्पनी के सार्वजनिक कोषों में सोना लेना बद कर दिया और इस प्रकार सोने का सिक्का बिल्कुल उठगया। किन्तु इस कार्य के घोर विरोध होने की सभावना थी क्योंकि वह तत्कालीन मुद्रा प्रणाली के विरुद्ध कार्य था। अमरीकन सिविलवार से भारत के

पुनरभ्युदयकाल में तीनों प्रदेशों की चेम्बर्स आफ कामर्स ने फिर सोने के सिक्के का आन्दोलन उठाया। सन् १८६४ में भारत सरकार ने अपने एक खरीते में, भारत मन्त्री को लिखा था कि भारत में भी सावरिन और अर्द्ध सावरिन चलन सिक्के प्रति सावरिन १० रु० के हिसाब से माने जायें। इसी के साथ यह सुझाया गया कि नोटों के बदले में रुपये की तरह सावरिन भी दिये जाये, किन्तु दोनों धातुओं के लिये एकसी ही सुविधा के सम्बन्धमें वह बाध्य न थी। होम गवर्नमेन्ट-इंग्लैंड की सरकार इस बात के विरुद्ध थी कि अंग्रेजी स्टेंडर्ड सिक्का भारत में अपरिमित चालू सिक्का बना दिया जाये, किन्तु इस सम्बन्ध मे उन्हे कोई विरोध न था कि सरकार द्वारा निश्चित रेट पर सार्वजनिक कोषो में सोने का सिक्का लिया जाय और इसकी सूचना सर्वसाधारण को देदी जाये। तदनुसार २३ नवम्बर सन् १८६४ की सूचना द्वारा इस बात की आज्ञा दे दी गई कि अंग्रेजी सिक्का--सावरिन और अर्द्ध सावरिन--सरकारी ऋण चुकाने के लिये १० रु० = १ पौंड और १८३५ की सोने की मुहर १५ रु० प्रति मुहर के हिसाब से कोषों में लिया जाये।

३० वर्ष में दो चार छोटे बडे परिवर्तनो के हो जानेपर अब इस बात की घोर आवश्यकता आ पड़ी थी कि भारतीय मुद्रा प्रणाली की एक राजकीय कमीशन द्वारा भली भाँति जाच करायी जाये। तदनुसार सन् १८६६ में एक कमीशन बैठा जिसने भारत में सोने के सिक्के की आवश्यकता को महसूस किया

और यह सम्मति दी कि सरकारी खजानों में अंग्रेजी और अस्ट्रेलियन सावरिन स्वीकार किये जायें और सोने के परिवर्तन में करन्सी नोट चलाये जायें। सन् १८६८ मे सोने की कीमत में कुछ बढती कर पहली सम्मति तो कार्य रूप में परिणित करदी गई, इस समय सावरिन १० रु० ४ आने का था।

यह फ्रेंको-प्रशियन युद्ध के अन्त में और जर्मनी द्वारा चांदी मुद्रा से हटा देने पर हुआ था। इस परिवर्तन के ३ वर्ष उपरान्त लार्ड नार्थब्रुक को कौन्सिल के अर्थ सचिव सर रिचार्ड टेम्पलने भारतमें सोने की मुद्रा प्रणाली और सोने का सिक्का चलाने के सम्बन्ध मे एक सुविचार पूर्ण मेमोरेडम (उद्देश्य पत्र) पेश किया। फिर आगे कई वर्षों तक भारत सरकार द्वारा अनेक सम्मतियां दी जाने पर भी होम गवर्नमेन्ट ने उन्हें स्वीकार न किया। हम उन घटनाओं का वर्णन कर ही चुके हैं जिनके कारण फाउलर कमेटी की स्थापना हुई और उन बातों का भी विवरण दे चुके है जो चांदी के सिक्के मुफ्त में ढालने की टकसालों के बंद कर देने के उपरान्त हुईं। किन्तु इसके पूर्व कि हम भारत में सोने की आवश्यकता पर आलोचनात्मक रीति से विचार करें, यह उचित जान पडता है कि पाठक भारत सरकार के कतिपय सर्वोच्च अधिकारियों की सम्मति को जान लें जो उनने भारत में सोने के सिक्के की आवश्यकता के सम्बन्ध में दी है। यू० पी० के गवर्नर और तत्कालीन अर्थ सचिव सरजेम्स मेस्टन ने सन् १९१० में

बजट पर भाषण देते हुए कहा था, "हमारे उद्देश्य और कार्यपथ सरल हैं, विशुद्ध हैं और अपने आदर्श की उन्नति में अधिक विरोध भाव की आवश्यकता नहीं पड़ी है। फाउलर कमेटी के समय से यह उन्नति सच्ची और अटूट रही है। इस आदर्श तक पहुचने के लिये अभी एक पग और आगे बढना है। हमने भारत वर्ष को समार के सोने के देशों से अर्थात् जहा सोने का सिक्का प्रचलित है उन देशों से सम्बद्ध कर दिया है, हम सोने के एक्सचेंज स्टैंडर्ड तक पहुच गये हैं और उसे हम धीरता पूर्वक उन्नत और विकसित कर रहे हैं। अन्य और अन्तिम सीढ़ी सच्ची स्वर्ण मुद्रा प्रचलन है। और मुझे पूर्ण आशा है कि समय पर वह अवश्य किया जायगा; किन्तु हम उसे विवश नहीं कर सकते।" यही विचार १६ मई सन् १९१२ में भारत सचिव को लिखे गये एक खरीते में भारत सरकार द्वारा प्रकट किये गये थे। "हम जानते हैं और यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि भारत मे चादी के सिक्कों की टकसालो का बन्द होना भारत मे सोने के सिक्के का प्रचलन होने का युक्ति युक्त और स्वाभाविक परिणाम था। ऐसा करने से अधिकारी वर्ग द्वारा मुद्रा प्रणाली के समुचित विकाश के लिये जो मार्ग ग्रहण किया गया है उसमें एक पग आगे बढने में सहायता मिलेगी और भविष्य में मुद्रा प्रणाली को स्थिर रखने में विशेष सहायक होगी। स्वर्ण मुद्रा प्रचलन के हमारे प्रस्ताव के साथ भारतीय जनता की पूर्ण स्वीकृति है।"

फाउलर कमेटी की सम्मति के अनुसार भारत सरकार ने यह स्वीकार किया कि अंग्रेजी स्टेंडर्ड सिक्के अर्थात् सावरिन और अर्द्ध सावरिन भारत मे ढाले जायें। इस पर होम गवर्नमेंट ने बहुत विरोध किया। यदि भारत की टकसालों में अंग्रेजी सिक्का ढाला जाये तो वे रायल मिन्ट की शाखाएं होनी चाहियें और उसी के नियमानुसार उन्हें काम करना चाहिये जो असभव न था। यदि भारतीय टकसालें स्वतन्त्र बना दी जायें तो भारत में सोने का सिक्का चलाने में बड़ा व्यय होगा। इस पर भारत सचिव ने भारत सरकारको लिखा (८ अक्टोबर सन् १९१२) कि भारत में अंग्रेजी सिक्का ढालने के स्थान पर १०) रु० मूल्य का कोई भारतीय सिक्का ही ढाला जाये और भारत सरकार ने अपने प्रस्ताव को बिल्कुल अस्वीकार किये जाने की अपेक्षा यही बहु-व्ययी कार्य करना स्वीकार किया। किन्तु इस पर भी ब्रिटिश खजानों के विरोधों ने बौछार की और अन्त में एक रायल कमीशन की स्थापना इसलिये की वह सम्पूर्ण भारतीय मुद्रा प्रणाली का निरीक्षण करे और उक्त प्रस्ताव पर अपनी सम्मति दे।

चेम्बरलेन कमीशन ने यह परिणाम निकाला कि, "यह भारत को हित कर नहीं है कि वहां सोने के सिक्के का प्रचलन करने के लिये उत्साह दिलाया जाये। हम भारत में सोने के सिक्के का प्रचलन हानिकार और व्यर्थ समझते हैं। भारत को अपनी मुद्रा पद्धति में मितव्यय का खयाल रखना चाहिये। किन्तु भारतीयों को मुद्रा के विभिन्न आर्थिक रूपों के उपयोग में

शिक्षा देते हुये सरकार को इस सिद्धान्त पर चलते रहना चाहिये कि वह लोगों को मुद्रा का इच्छित रूप दे सके।" किन्तु ये बाते केवल भारतवासियो का मुँह पोछने के लिये हैं। भारतीय मुद्रा पद्धति की कृत्रिमता इस समय वडे २ सिद्धान्त वादियों के समर्थन द्वारा वैज्ञानिक रूप को धारण करने की अवस्था मे आ गई है। अब उसकी कृत्रिमता अधिक काल तक ठहर नहीं सकती।

अब जरा उन लोगो की बाते पर भी ध्यान देना चाहिये जो इस बात के समर्थक हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिये चिह्न सिक्का लेना चाहिये और एक्सचेंज को रखने के लिये स्वर्ण-कोष रहना चाहिये। (१) पहली बात यह कही जाती है कि यदि हमारी सम्पूर्ण मुद्रा प्रणाली स्वर्ण मुद्रा की ही होगी तो हमे आर्थिक दुरवस्था के समय बाहर भेजने के लिये यथेष्ट परिमाण में सोना न मिल सकेगा। क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि ऐसे समय में लोग दशा को सुधारने के लिये बैंको में परिवर्तनार्थ सोना लाने के बदले उसे सग्रह करेंगे। यद्यपि पश्चिम के शिक्षित लोग ऐसा न भी करेंगे किन्तु भारतवर्ष के सैकडो वर्ष की आदतों के गुलाम उसे सग्रह किये बिना मानेंगे? इसके उपरान्त यह कहा जाता है कि भारतीय मुद्रा प्रणाली के सुधारकों को इग्लैंड और उसकी स्वर्ण मुद्रा प्रणाली का आदर्श उदाहरणार्थ ग्रहण न करना चाहिये। इग्लैंड एक ऋणदाता प्रदेश है और वह ऐसी अवस्था मे केवल अपना ऋण इकट्ठा करके ही

दशा को सुधार सकता है। इग्लैंड बैंक में स्वर्ण कोष द्वारा यह कार्य बड़ी सरलता से किया जाता है। इग्लैंड बैंक डिसकाउन्ट की दर बढ़ा देता है और जिससे कुछ काल के लिये विदेशी ऋण में रुकावट डाल देता है। इसके अतिरिक्त इग्लैंड में चेक पद्धति के पूर्ण प्रचार ने मुद्रा और नोटों तक को गौण कर दिया है। इन सब बातों में भारत इग्लैंड की बराबरी नहीं कर सकता। भारत स्वभावत ही ऋणी है और इग्लैड स्वभावत ही ऋण दाता है। भारत के ९० प्रति सैकड़ा मनुष्य अशिक्षित हैं अत वे द्रव्य के दूसरे रूप नोट अथवा चेक का महत्व नहीं जान सकते। इग्लैंड का प्रत्येक व्यापारी अपना बैंकका हिसाब रखता है और इस प्रकार इग्लैंड में बैंकिग का बहुत अधिक प्रचार है, किन्तु भारतवर्ष में यह अपनी शैशवावस्था में ही है।

(२) दूसरे भारतवासी स्वर्ण मुद्रा नही चाहते। क्योंकि कोई भी सोने का सिक्का जो बनाया जायगा उनके लेन देन के कार्य में अधिक मूल्य होगा। उदाहरण के लिये यह कहा जाता है कि सरकार ने सन् १९००—१९०२ में सावरिन प्रचलन करने का प्रयत्न किया था किन्तु कुछ ही काल पश्चात् एक दम बहुत से सावरिन भुनाये जाने के लिये खजानो में लौट आये। बहुत से गला डाले गये और बहुत थोड़े प्रचलन में शेष रहे।

(३) तीसरे यदि भारत स्वर्ण मुद्रा पद्धति और प्रधान स्वर्ण मुद्रा प्रचलन का आरम्भ भी करेगा तो उसे यथेष्ट सोना मिलना कठिन होगा। क्योंकि भारतवर्ष में आवश्यकता की पूर्ति के योग्य

परिमाण में सोना उत्पन्न नहीं होता। फिर यदि भारत सोना खरीदेगा तो सोने की क़ीमत रुपये के रूपमें बढ जायगी और इस से भारतवर्ष को सरासर बहुत हानि होगी।

उपरोक्त तीनों बातें हमारी अपनी कल्पना से अथवा अनुमान द्वारा उद्भूत नहीं हुई हैं प्रत्युत् ये बातें मुद्रा प्रणाली के प्रसिद्ध ज्ञाता और नेता प्रौ० जे० एम० कीन्स की कही हुई हैं। जो व्यक्ति श्रीयुत् कीन्स की भारतीय करन्सी और फाइनेन्स पर लिखी गई पुस्तक का अवलोकन करेगा उससे यह बात छिपी नहीं रह सकती कि श्रीयुत् कीन्स ने जिन आधारों और तर्कों का अवलम्बन किया है वे चेम्बरलेन की तर्कप्रणाली से बहुत कुछ समानता रखते हैं। वर्तमान प्रणाली की समर्थक ये तीनों बाते रायल कमीशन रिपोर्ट के पृष्ठों में आप पा सकेंगे अथवा प्रो० कीन्स की Indian Currancy & Finance नामक पुस्तक मे देख सकेंगे।

अब हमें इन तीनों बातों पर जरा विचार करना आवश्यक है। पहली बात तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत के स्थान का भ्रम पूर्ण निश्चय है। यद्यपि भारतवर्ष प्रति वर्ष अधिक ऋण लेता है, किन्तु उसका वार्षिक व्यापारिक अवशेष (बकाया) उसके प्रतिकूल नहीं रहता और इसीसे यह ऋणी देश नहीं कहा जा सकता। होम चार्जेज जैसी बडी रकम को देदेने पर भी भारत का निर्यात आयात से कहीं अधिक रहा है। यदि हम पिछले ३०।३५ वर्षों के अंकों को देखें तो हमे ज्ञात होगा कि

दो महा युद्ध और दो बड़े अकाल तथा अनेकानेक कठिनाइयों के होते हुए भी भारत का निर्यात परिमाण आयातसे कहीं अधिक रहा है। यदि हम केवल होम चार्ज की तादाद निकाल दें तो इन कमी को पूरा करने के लिए भारत को कभी २ हीरे और जवाहिरात बाहर भेजना पड़ते हैं। अतएव यद्यपि हम यह बात मानते हैं कि भारत इग्लैंड से अनेक बातों में बिल्कुल भिन्न है और यद्यपि मुद्रा के सम्बन्ध में इग्लैंड का आदर्श हमारे लिये सबसे निकृष्टहै तथापि हमें यह मानना चाहिये कि कम से कम स्वर्ण के अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में भारत भी इग्लैंड की तरह सदिग्ध अवस्थाओं में अपनी ठीक २ दशा रख सकेगा। महायुद्ध के तीन चार वर्षों में भारत वर्ष समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति में समर्थ हो सका यही नहीं साम्राज्य के प्रति उसने अतिरिक्त सहायता प्रदान की। अत एक यही बात—इस बात का सच्चा प्रमाण है कि भारतवर्ष के सोने के अपने साधन हैं। यह अनुचित न होगा कि होमचार्ज मिला-कर भी यदि प्रति दसवें वर्ष हिंदुस्तान का बकाया उसके खिलाफ़ हो तो स्वर्ण कोष, स्वर्ण मुद्रा कोष तथा सरकारी कोषों का सोना उसकी पूर्ति के लिये यथेष्ट होगा। फिर भी यदि एक वर्ष से अधिक उसकी प्रतिकूलता बनी रहे, यद्यपि ऐसा होना बहुत कम सभव है, तो भारत वर्ष ऋण द्वारा उसकी पूर्ति कर सकता है। और इस प्रकार अपनी साख़ बनाए रह सकता है। इसके अतिरिक्त हम यदि यह भी मानलें कि भारत वासी सोना जोड़ने लगेंगे तो भी हमें यह जान लेना चाहिये कि उसका

परिमाण औचित्य से परे न होगा । यह कहना कदापि युक्ति सगत नहीं है कि भारतीय ऐसे दरिद्र हैं कि वे शीघ्र ही सोना बटोरने लगेंगे अत वे सोने का सिक्का पाने के योग्य नहीं हैं। ऐसा बहुत कम होगा और वह भी वे ही लोग करेंगे जो सिक्का गलाने का काम करते है । किन्तु वे भी योग्यता से बाहर ऐसा नहीं कर सकते । यदि साधारण दशा मे बकाए की रकम भारत के अनुकूल डेढ करोड़ और ढाई करोड के बीच मे हो जो प्राय सोने के रूप मे ही दी जाती है तो इतना सब सोना लोगों द्वारा नहीं एकत्र किया जा सकता । अधिकाश बैंको अथवा सरकारी खजानो मे लौट आयेगा और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय लेन देन के लिये यथेष्ट परिमाण मे सचय रहेगा । इसके अतिरिक्त आर्थिक दुरवस्था मे कृत्रिम मुद्रा प्रणाली की आवश्यकता नही है । इसके लिये तो और अच्छे बैंकिंग के सिद्धान्त होने चाहिये । एक श्रेष्ठ प्रणाली होनी चाहिये जो देश की बाहरी हिसाब ठीक कर सके । वास्तव मे भारत मे बैंकिंग इस समय शैशवावस्था मे है ।

दूसरी बात के सम्बन्ध मे हम प्रो० कीन्स की पुस्तक से निम्न लिखित अश उद्धृत करते हैं । यद्यपि उनने सरकारी कागजों से इस हानिकारक प्रमाण को सिद्ध कर दूर कर देने का प्रयत्न किया है तथापि हम देखेंगे कि उत्तर वास्तव में उत्तर देने योग्य नहीं ।

वर्ष	सोने के स्टाक में कुल अतिरिक्त योग अर्थात् आयात निर्यात का कुल तादाद १=(२)+(३)	पेपर करन्सी कोष और खजानों में सोने का कुल अतिरिक्त योग २	जनता के पास के सोने में अतिरिक्त योग ३=(४)-(५)	जनता के पास सोने की ईंट में अतिरिक्त योग ४	जनता के पास सावरिन में अतिरिक्त योग
	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड	पौंड
१६०१—२	३,२२३,०००	५०००	३ २२८,०००	२,२६१,०००	९६७,०००
१६०२—३	७,८८२,०००	२,८५०,०००	५,०१२,०००	२,८१४,०००	२,१६८,०१०
१६०३—४	८,६६३,०००	६७४,०००	८,०१६,०००	४,७४१,०००	[illegible],२७८,०००
१६०४—५	८,८४१,०००	३८,०००	८ ८०३,०००	५,८६६,०००	२,६३७ ०६०
१६०५—६	२,६६८,०००	६,८३०,०००	६,५३८,०००	५,८०६,०००	३,७३५ ०००
१६०६—७	१२,०६१,०००	१६३,०००	१२,२५८,०००	७,०६८,०००	५,१५६,०००
१६०७—८	१३ ६७७,०००	६१३,०००	१४,६७०,१००	७ २४३,०००	७,४२७,०००
१६०८—९	५ ०२२,०००	२,८४२,०००	७,८६५,०००	४ ४२२,०००	३,४४३,०००
१६०९—१०	१६,६२०,०००	६,३४७,०००	१०,२७३,०००	७ ४०७,०००	२,८६६,०००
१९१०—११	१८,१५३ ०००	७१,०००	१८,०८२,०००	९ ९९१,०००	८,०९१ ०००
१९११—१२	२७,३४५,०००	९,३४७,०००	१७,९९८,०००	९,११७,०००	८ ८८१,०००
१९१२—१३	२४,५५१ ०००	४ २३१,०००	२०,३२०,०००	९ ३२० ०००	११,०००,०००
कुल	१४९,०३६,०००	१२,९७४,०००	१३६,०६२,०००	७६ ०८४ ०००	५९ ९७६ ०००

इस प्रकार भारत में खपे हुए १४ करोड़ १० लाख पौंडों में १२ वर्षों में कुल १३ करोड़ ६० लाख पौंड अर्थात् ९० प्रति सैकड़ा से अधिक जनता द्वारा लिये गये। इनमें से ६करोड़ अर्थात् ४४ प्रति सैकड़ा के सिक्के थे और शेष की ईंटें थीं। इसके प्रतिकूल एक वर्ष का अनुभव जब कि ६, ७५०, ००० पौंड प्रचलन में रखे गये थे जिनमें से आधे सरकार के पास लौट आये, भारत में सोने के सिक्के की आवश्यकता सिद्ध करने के लिये प्रमाण रूप नहीं कहा जा सकता। सोना बाहर भेजने वाले चाहे जितनी अधिकता करें हम यह कदापि नहीं कह सकते कि वे वास्तव में भारत से मुद्रा बाहर भेज सकने में सफल हुए हैं।

करन्सी के हिसाब का पूर्ण रूप से विचार करने पर जाना जाता है कि सन् १९१४ में प्रचलन के ३०० करोड़ रुपयों में कुल १८० करोड़ के रुपये थे, ६० करोड़ के नोट थे और शेष प्रचलन में सोने के रूप में प्रस्तुत थे। यदि हम यह अंक स्वीकार करलें। आयात सोने के सिक्कों में से ⅓ भाग महायुद्ध के पूर्व प्रचलन में थे। किन्तु यह परिणाम न्यूनता सूचक ही है बहु-दर्शक नहीं।

भारत में स्वर्ण मुद्रा प्रचलन के विरुद्ध अन्तिम आक्षेप का उत्तर उपरालिखित सूची से ही मिलता है। यद्यपि भारत वर्ष की अपनी सोने की उत्पत्ति बहुत थोड़ी है। वह २,१००,००० पौंड से कुछ ही अधिक है तथापि अनुकूल व्यापारिक अवशेष [बका-

था] के कारण यहां सोने का स्थिरता पूर्वक प्रचलन हो सकता है। शताब्दी के प्रथम बारह वर्ष तक यदि भारत सरकार अपने सोने के सिक्के ढलवाती तो पेपरकरन्सी कोष तथा कोष के हिसाब में ५ करोड़ पौंड सुरक्षित रखने के अतिरिक्त वह १० करोड पौंड के सिक्के प्रचलन में ला सकती थी। सरकार यह सब बिना चांदी खर्च किये और इस प्रकार व्यर्थ में भारत को हानि पहुँचाये बिना तथा अतिरिक्त सोना खरीदे बिना ही बड़े मजे से कर सकती थी। यदि सन् १९०० में ही सरकार सोने का सिक्का चला देती तो प्रत्येक रुपये को सोने के रूप में परिवर्तित करने का भय न होता। १० करोड के रुपये और ५ करोड के नोट अवश्य ही प्रचलन में रहने चाहियें। अत हमें स्वर्ण मुद्रा प्रचलन के लिये ५ करोड़ सोने के सिक्के चाहिये, और यदि यह तादाद पांचसाल के लिये बनी रहे—इस बीच में रुपया चालू सिक्का माना जाये और पश्चात् केवल चिह्न सिक्का बना दिया जाये—तो हमें अपेक्षित सोने की प्राप्ति के लिये हमारा साधारण निर्यात ही अपेक्षा कृत अधिक होगा।

चेम्बरलेन कमीशन ने भारतवर्ष में सोने के सिक्के की आवश्यकता के पक्ष मे ये बातें कही हैं —" (१) सोना रुपये की अपेक्षा प्रचलन का श्रेष्ठ माध्यम है। (२) स्वर्ण-मुद्रा पद्धति आदर्श मुद्रा प्रणाली की विधायक है। (३) सोने का सिक्का चलने से कुछ गौरव प्रकट होता है किन्तु चांदी का सिक्का कम उन्नत लोगों का चिह्न है।' [४] एक्सचेंज अथवा

विनिमय के लिये अधिकांश सोने का रहना अच्छा है। (१) रुपयों का निरन्तर ढलता जाना आक्षेप योग्य है और सावरिन के अधिक प्रचार से दूर किया जा सकता है। (६) जब तक भारतवर्ष में स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन न होगा तब तक वहां केवल कृत्रिम मुद्रा प्रणाली रहेगी। (७) भारतवर्ष में सोना खपाने के लिये उत्तेजन दिया जाना चाहिये जिससे सोने की कीमत में घटती होने से साधारण रूप से ससार की रक्षा हो सके।

जैसी कि आशा की जाती है कमेटी इन सब बातो के लिये प्रयत्न करती जान पडती है, किन्तु उनके उत्तर कदापि सतोषप्रद नहीं। सबसे पहले वे यही बात सामने रखते है कि भारत जैसे देश के लिये छोटे व्यवहार मे सोने का सिक्का चांदी की अपेक्षा कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता। इससे कम से कम यह तो सिद्ध होता है कि अधिक परिमाण में लेन देन के लिये सोने का सिक्का आवश्यक है। दूसरी बात जो वे सामने रखते हैं ससार का इतिहास है और उसके द्वारा वे हमे यह बतलाने की चेष्टा करते है कि जिन देशों में स्वर्ण मुद्राओं का प्रचार हुआ है वहा नोटो के प्रचलन में गहरा धक्का पहुचा है। कमीशन का कथन है कि नोट यदि वे तत्काल भुनाये जा सकें तो प्रचलन के सब से सुविधा जनक माध्यम हैं। पर वे यह कहना भूल जाते हैं कि नोट प्रचलन के द्रव्य का एक प्रकार का रूप होने के कारण इस लिये विश्वासनीय हैं कि साधारण जनता उन पर अपना विश्वास रखती है। यदि अधिकारी नोट की रकम से कुछ कम रकम

भुनाने पर देंतो वह विश्वास घात की पात्र होगी। अतएव कमीशन की यह धारणा कि सोनेके सिक्के के प्रचार से नोटों के प्रचार में धक्का पहुँचेगा ठीक नहीं है। जब कि रुपयों के नोट इस तरह सर्वप्रिय हो रहे हैं तो जिन नोटों का भुगतान सोने में होगा वे तो निःसन्देह लोक प्रिय होंगे ही। जैसे २ उद्योग धन्धो का तथा कारखानों का प्रचार हो रहा है उसीके साथ २ नोटों का भी प्रचार बढ़ रहा है और बैंकों के बढ़ने से इसका प्रचार और भी बढ़ेगा, कारण कि लोगों का इस पर विश्वास जमता जा रहा है। यह कदापि सम्भव नहीं है कि सोने के चलते ही नोटों का प्रचार रुक जायेगा। बल्कि स्वर्ण सिक्के साथ ही यदि नोट का सम्बन्ध हो जावे तो जनता उसे विशेष विश्वास की दृष्टि से देखेगी।

एक आक्षेप यह है कि सरकार यदि आज स्वर्ण मुद्रा का प्रचार करे तो उसे चांदी के लिये जितने रुपये प्रचलित हैं उन सब को सोने के सिक्कों में बदलना होगा। इसके लिये बहुत सोने की आवश्यकता होगी और इतना सोना खरीदा जावे तो निःसन्देह सोने का भाव तेज हो जावेगा और चांदी की दर गिर जावेगी। एक तो सरकार के पास इतना रुपया नहीं है, दूसरे चांदी के भाव गिरने से और सोने के मूल्य में बढ़ती होने के कारण सरकार की आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ जायगी और इस कारण भी सोने के सिक्कों का प्रचार सम्भव नहीं है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो इस आक्षेप में कुछ भी सार नहीं है।

कोई सरकार इस बात के लिये बाधित नहीं है कि एक दम सब सिक्कों का परिवर्तन सोने में कर दे।

अभी केवल इतना करने की आवश्यकता है कि प्रचलित चांदी के सिक्के और नये सोने के सिक्कों का परस्पर मूल्य नियत कर दिया जाय और दोनों सिक्के बराबर चालू रहें। हाँ, नये सिक्के अधिक सोने के ही बनाये जायें। धीरे २ आप ही सर्वत्र सोनेके सिक्कों का प्रचार हो जायगा। स्वर्ण विनिमय कोप में जो सार्व-जनिक रुपया जमा है वह इस काम में लाया जा सकता है और धीरे २ स्वर्ण मुद्रा सब जगह चलाई जा सकती हैं। इसके अति-रिक्त हमारे यहा सोना भी काफी निकलता है। प्रति वर्ष ३ करोड़ का सोना निकाल कर साफ किया जाता है। फिर जो व्यापारी हमारे यहा माल खरीदेंगे उनसे भी हम सोना ही लेंगे और इस तरह सिक्के के लिये थोड़े समय मे पर्याप्त सोना भी मिल सकता है। अभी हाल में १ अरब ५० करोड़ के नोट प्रचलित रहेंगे-- केवल ७५ करोड़ के सोने के सिक्के चला देने से आसानी से हमारा काम चल सकेगा। पाच वर्ष तक इसी तरह सोने के सिक्कों को बढ़ाते जायेंगे और साथ में चादी के रुपये भी चलते रहेंगे। पाच साल के उपरात चादी के सिक्के केवल चिन्ह सिक्के कर दिये जायगे और फिर मुख्यत सोने ही का सिक्का चलने लगेगा।



१० वां प्रकरण

इग्लैंड में सोने के सिक्कों का प्रचलन ।



ग्लैंड में सोने के सिक्के का प्रचलन सुमुहूर्त से प्रारभ होता है। सन् १७१७ ई० मे गिन्नी का भाव २१ शिलिंग का होगया और इसका कारण सर ऐजक-न्यूटन की वह रिपोर्ट जिसके मन्तव्य के अनुसार स्वर्ण मुद्राओं के प्रचलन का विरोध करना था।

प्रारभ मे हमारे यहां चादी का सिक्का माध्यम था, जो सेक्सन पौंड की धातुके तौल पर बनाया गया और शिलिंग जो पौंड का ६६ वां भाग तौल में है पौंड की चादी की तौल का २० वा हिस्सा है। १४ वीं शताब्दी के प्रारभ से ही देश में निर्बाध रूप से सोने का प्रचार हुआ है किन्तु चादी से उसकी तुलना करने पर सोने का मूल्य बदलता रहा है। १८ वीं शताब्दी के प्रारभ तक चादी के सिक्कों का अधिकाश में प्रचलन था किन्तु सन् १६९६ में चादी के सिक्कों के निर्माण के समय सोना अपने से कम मूल्य की धातुओं को प्रचलन से हटाने लगा और इस प्रकार एक भीषण दशा उपस्थित हुई। महाराज विलियम तृतीय के शासन कालमें चादी के सिक्कों का पुनर्निर्माण इसलिए आवश्यक समझा गया कि चादी के सिक्कों की दशा बहुत बिगड रही

थी और वे अपनी असली तौल से ३० से ५० प्रति सैकड़ा कम तौलमें चल रहे थे। इसी से गिन्नी के भाव में परिवर्तन हुआ। सन् १६६५ में पहले पहल गिन्नी चलाई गई थी तब उनका भाव २० शि० था लेकिन चादी के मूल्य में घटती देने के कारण गिन्नी का मूल्य बढ़ गया। जिन लोगों के पास गिन्नी थी उनने किसी २ दशा में तो ३० शि० से कम में देना स्वीकार ही न किया।

चादी के सिक्कों के पुनर्निमार्ण पर राष्ट्र ने जिसमे २७००००००० पौंड व्यय हुआ, गिन्नी का भाव घट कर २ शि० तक पहुँचा, किन्तु सार्वजनिक भय के कारण चादी के नये सिक्कों के इस व्ययात्मक प्रचलन से वे शीघ्र ही प्रचलन से गायब होगए और देश में सोने का प्रचार होगया।

ग्रेषम का सिद्धान्त अपने दूसरे रूप में कार्य कर रहा था। सोने का भाव बढ गया था अतः वह प्रचलन से चादी को हटा रहा था। प्रारम्भ मे यह कठिन बोध होता है कि सोने का भाव किस तरह बढा, क्योंकि गिन्नी अनिश्चित और परिवर्तित भाव में चलती थी और सरकार ने दोनो धातुओं का परस्पर मूल्य नियत करने का कोई प्रयत्न किया नहीं था। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सोने का भाव बढ गया? इस प्रश्न का उत्तर इस पत्र से मिल जायगा जो ट्रेजरी बोर्ड ने एक्सचेकर (Exchequer) को लिखा था.—

२५ अक्टूबर, सन् १६९७

महाशय,

विगत गुरुवार के गजट में जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है उसके अनुसार सम्राट् के कोष के लार्ड कमिश्नरों की आपको सूचना है कि आप एक्सचेकर के पत्रों की रसीद में यह सूचित करें कि वे २२ शि० के हिसाब से गिन्नी स्वीकार करते हैं।

ह — डब्ल्यू एम लॉडिस

इसी पत्र के कारण गिन्नी का भाव २२ शि० होगया और इसी हिसाब से सोने के भाव में बढ़ती हुई।

इस सम्बन्ध में सर ऐजक न्यूटन से अपनी सम्मति प्रकट करने के लिए कहा गया। सन् १७१७ में न्यूटन की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है वह बड़ी ही बुद्धिमत्ता पूर्ण है। न्यूटन ने दिखलाया कि फ्रांस, हालैंड, इटली, जर्मनी, पोलैंड, डेन्मार्क और स्वीडन कहीं भी सोने चांदी के मूल्य का अनुपात १५ १ से अधिक नहीं है और इस हिसाब से गिन्नी का भाव चांदी के रूपमें २० शि० ८॥ पेंस होगा। लेकिन इंग्लैंड में गिन्नी २१ शि० ६ पेंस० से भी ज्यादा बढ़ गई थी अतएव यह एक लाभ-जनक व्यापार था कि इंग्लैंड को सोना भेजा जाय और वहां से चांदी खरीदकर इन देशों को भेजी जाय।

न्यूटन की सम्मति इस प्रकार थी —यदि इंग्लैंड में सोने का भाव वही कर दिया जाय जैसा कि अन्य देशों में है तो

फिर यूरुप के अन्य देशों को चादी बाहर भेजने के लिए कोई प्रलोभन न होगा । और इस अन्तिम बात को पूरा करने के लिए यह उचित होगा कि गिन्नी में से १० या १२ पेंस कम कर दिए जायँ । पर यदि हालमें केवल ६ पेंस कम किए जायेंगे तो वह चादी को बाहर भेजने या गलाने के प्रलोभन को कम कर देगा ।

इसके पश्चात् राजकीय विज्ञप्ति प्रकाशित हुई जिस के अनुसार गिन्नी का भाव २१ शि० कर दिया गया । तथापि यह कर्म भी सर्वथा अनुचित था, जैसा कि आगे चल कर मालूम होगा । यह केवल भूल थी । सन् १७१७ से १८१६ तक सोना और चादी दोनों ही किसी भी परिमाण तक प्रचलन के सिक्के थे । दोनो प्रकार के सिक्को को मुफ्त में ढालने के लिए टकसाले खुली हुई थीं और दोनों निश्चित करके अनुपात से प्रचलन में बने रहे । द्विधातु मुद्रा प्रणाली के ये तीन अनिवार्य चिन्ह है । किन्तु इस समय हो क्या रहा था ? कोई भी चादी को टकसाल में सिक्के ढलवाने के लिए न लाता था क्योंकि उसका मूल्य सिक्कों की अपेक्षा ईंट के रूपमें अधिक था । यदि किसी व्यापारी के पास पूर्व से चादी आती थी तो उसके लिए यह लाभप्रद था कि वह उसका सोना लेकर सिक्का ढलवाये न कि चादी सीधी टकसाल को भेजदे ।

यूरुप में वह इतना सोना ले सकता था, जिससे वह २० चादी के शि० और ८ पें० में एक गिन्नी बना सकता था । यदि

वह अपनी चादी के सिक्के बनवा लेता तो उसे एक सोने की गिन्नी के लिए २१ शि० देना पडते।

इसका सब से वडा परिमाण यह हुआ कि चादी के सिक्के प्रचलन से हट गये यहा तक कि विनिमय कार्य के लिए भी उनकी कमी पड़ने लगी। जो कुछ बच रहा था वह इस प्रकार नष्ट हो गया कि सन् १७७४ में यह प्रकट किया गया कि चादी प्रचलन माध्यम २५ पौंड से अधिक परिमाण के लिए रहे और वह भी तौल में गिनती में नहीं।

इस प्रकार अंग्रेजी इतिहास में मुद्रा प्रणाली में सोने का न केवल प्रचार ही हुआ प्रत्युत् वह मुद्रा का प्रधान अग बन गया। राष्ट्र की इच्छा के विरुद्ध सोने ने चादी को दबा दिया। लेकिन फिर लोग सोने को ही चाहने लगे। जब सन् १८१६ में मुद्रा प्रणाली का पुनर्संगठन हुआ तो किसी ने चादी को पहले के स्थान पर लाने के लिए न कहा। जो कुछ चिरकाल से व्यवहार गत था उसी को सन्१८१६ के एक्ट ने नियमित बना दिया। सन् १८१६ के एक्ट ने सिक्कों को हिसाब की गिनती के अनुसार इकाई से लेकर ठेठ तक सुसगठित कर दिया और तदनुकूल गिन्नी तक कम मूल्य के सिक्के द्वारा परिवर्तित कर दी गई।



११ वां प्रकरण।

द्वि धातु मुद्रा प्रणाली—फ्रांस देशीय पद्धति।



ह एक बड़ा जटिल प्रश्न है कि प्रचलन में एक धातु का सिक्का हो या दो धातुओं का। यह प्रश्न यहा तक जटिल हो गया है कि इसके सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन हो गया है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि विषयका भली भाति अध्ययन करने पर उसका परिज्ञान अवश्य हो जायगा। साधारण लोगों द्वारा बार २ यह प्रश्न उठता है कि सिक्के के मूल्य का निरचित परिमाण किस प्रकार हो सकता है, पर इस प्रकारके सिक्के की पूर्ति होना कठिन है।

इग्लैंड में केवल सोनेका परिमाण निश्चित करनेवाले सुधारक इस बात को अस्वीकार न करेंगे कि सोनेके मूल्य में वस्तुओं के प्रति आम तौर पर परिवर्तन हुआ है। साथही वे इस बात का भी दावा नहीं कर सकते कि उनके निर्णयानुसार सिद्ध स्वर्ण का परिमाण ही निश्चित परिमाण है।

द्विधातु—प्रचलन के पक्षपाती, जिनमें फ्रांस प्रमुख है, कहते हैं, कि कुछ निश्चित शर्तों के मुताबिक, सोने चादी की एकता और मूल्य के स्टेंडर्ड में केवल सोने की अपेक्षा दोनों का सम्-

बन्ध कहीं विशेष प्रामाणिक होगा। इस पद्धति का स्पष्ट निरीक्षण नहीं किया जा सका, क्योंकि ये शर्तें अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों द्वारा चाहे सम्भव हों पर अभी तक उनके कार्यरूप मे परिणित होने का अवसर नहीं आया है।

यह तो किसी प्रकार किसी हद तक राष्ट्रीय आकाक्षाओंका विवाद है। व्यवहार कुशल इग्लैंड अपनी बात पर दृढ़ रहा। अपनी भूल को देखते हुये भी उसने उस प्रथा को स्वीकार न किया, जिसका अन्य देशों ने पूरा २ पालन किया। उसने इस दूसरी पद्धति के पक्ष में कार्य करने से साफ इन्कार कर दिया, यद्यपि यह पद्धति सिद्धान्त में उपयोगी और व्यवहार में सफलीभूत सिद्ध नहीं हुई है।

फ्रास, जो नैयायिक एव प्रयोगशील है, लेटिन आदि के सहयोग से द्विधातुओं के सिक्के जारी करने के प्रयत्न में रहा। उसने इस पद्धति को प्रचलित कर अन्य देशीय व्यवसाय को रोकना चाहा। अन्तर्राष्ट्रीय द्विधातु—पद्धति सम्मिलत कार्यो द्वारा यूरुप अमेरिका आदि सभ्य देशों में प्रचलित करने का भरसक प्रयत्न किया।

द्वि—धातु मुद्रा प्रथा में निम्न लिखित तीन बातों का होना परमावश्यक है —सोने और चादी का हाजर प्रचलन सरकार द्वारा निश्चित अनुपात से होना, दोनों धातुओं के सिक्के समान नियमों पर तयार करने के लिये टकसालें खोलना, दोनों धातुओं के लिये अपरिमित प्रचलन माध्यम होना।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस ने इन सिद्धान्तों पर अपने यहा की कान्सी प्रचलन का काम प्रारम्भ किया। सातवे जर्मिनल कानून (१८०३ ई) के अनुसार इस प्रथा का का प्रादुर्भाव हुआ और दोनों धातुओं के प्रमाण की राशि १५½ १ नियत हुई। आगे चल कर यह कठिनाई उपस्थित हुई कि सोने चादी के बाजार के मुताबिक ही कारखाने को भी रखना पड़ता था। परन्तु ग्रेषम के सिद्धान्तानुसार दोनो धातुओं के परिमाण में अन्तर पडने लगा। अर्थात् अधिक मूल्य वाली धातु कम मूल्य की धातु को प्रचलन से हटाने लगी। इस प्रकार सिद्धान्त में जो द्विगुण माध्यम थी व्यवहार में परिवर्तन माध्यम होने लगा। कभी तो सोने के सिक्कों का ढेर हो जाता और कभी चादी के सिक्कों का। बहुत थोडे काल तक दोनो धातुएँ समान रूप और समराशि में प्रचलित रहीं। इसका विवरण फ्रास देश के उन्नीसवीं शताब्दी के मौद्रिक लेखे से बताया जा सकता है। नीचे हम दश और पाच वर्ष के भीतर का सोने चादी की सिक्कों का औसत परिमाण देते हैं —

वर्ष	औसत बाजार भाव
१८११–२०	१५ ५१ १
१८२१–३०	१५ ८० १
१८३१–४०	१० ७५ १
१८४१–१८५०	१५ ८३ १

१८५१—१८५५	१५.४१ १
१८५६—१८६०	१५.३० १
१८६१—१८६५	१५.४० १

लेखे से स्पष्ट विदित होता है कि सन् १८११ और १८५० के बीच में औसत बाजार भाव टकसाल के भाव से गिरा ही था। हुआ क्या कि चांदी का भाव बढ़ने लगा और सोना प्रचलन में से गायब होने लगा। श्रीयुत मेकाल के कथन का सार यह है कि यह प्रमाणित किया जा सकता है कि सन् १८३९ फ्रांस देश में प्रचलन में नाम के लिए भी सोना न था। यह दशा इस शताब्दी के मध्य तक बनी रही जब तक कि सोने की खोज नहीं हुई। सन् १८४८ में केलीफोर्निया की खान से सोना निकलने लगा। सन् १८५८ में आस्ट्रेलिया की खानों में से भी सोना निकलने लगा और इस प्रकार अधिक परिमाण में सोना बाहर आने लगा। यहां तक कि सन् १८३१ से ४० के बीच में सोने का जो वार्षिक औसत हिसाब लगाया गया था उसके अनुसार २,८३०,००० पौंड सोना बाहर निकाला गया था। सन् १८४१—१८५० में उसका औसत ७,९३८,००० पौंड तक पहुंच गया था और सन् १८५१- ६० में वही २७,८१५,००० तक जा पहुँचा था। इतना सोना निकलने पर सोने का व्यवहार करने वाले देशों में खलबली सी मच गई। अधिक परिमाण में सोना आ जाने के कारण उसका मूल्य गिर गया।

परन्तु समय सदा एक सा नहीं रहता। इधर दक्षिण अफ्रीका में चांदी की खानो की खोज हुई। इसका फल यह हुआ —

प्रथमत मूल्य की अभिवृद्धि से द्रव्य की मोल लेने की शक्ति घट गई और दूसरे सोने की अपेक्षा चादी अधिक भाग में निकलने के कारण दोनों धातुओं की औसत बाजार दर को धक्का पहुचा, जो सन् १५५० और सन् १६५० में ११ १ से १५ १ तक जा पहुचा था। स्वर्ण व्यवहृत देशों के प्रचलन के सर्वनाश की भयकर आशङ्का और भविष्यद् वाणी प्रकट की जाने लगी, परन्तु सौभाग्य से स्थिति इतनी भयकर न थी, जैसी कि समझी जा रही थी। चादी की खानें निकलने पर उतनी हानि नहीं हुई। फिर भी यह विवाद ग्रस्त विषय रह जाता है कि सन् १८५० और १८६० के काल में भाव में जो इतनी बढ़ती हुई क्या वह सोने के कारण हुई ? यह तो निर्विवाद है कि भाव अवश्य बढा। मूल्य में अभिवृद्धि होना ऐसे ही विवाद ग्रस्त कारणों का फल था अत निश्चित रूप से यह नहीं बताया जा सकता कि किस कारण ऐसा हुआ। प्रोफेसर जेविन्स ने ५० व्यापारिक वस्तुओं के वार्षिक औसत मूल्य की अनुक्रमणिका तैयार की थी। सन् १८४९ में उनने वस्तुओं का मूल्य १०० माना सन् १८५५ में उसकी अनुक्रम सख्या १२५ होगई, सन् १८६० में वह १२४ थी और सन् १८६५ में १२१। और भी अनेक अर्थ शास्त्रज्ञों ने इस प्रकार मूल्य का तारतम्य निश्चित किया

है और उनसे भी सिद्ध होता है कि मूल्य में अभिवृद्धि थी। हम कह सकते हैं कि मूल्य की अभिवृद्धि का कारण सोने की खानों का प्रकट होना था।

दूसरी बात दोनों धातुओं के औसत परिमाण में अन्तर की है। जैसा कि ऊपर दी हुई सूची से विदित होगा यह परिमाण अत्यन्त सूक्ष्म है और ऊपर से बिल्कुल तुच्छ जान पड़ता है। पर यह क्षुद्र नहीं है क्योंकि इतने ही अन्तर से औसत बाजार भाव फ्रांस के टकसाली औसत भाव १५॥ १ से कम होगया। सन् १८५७ में के वेलियर ने Revue des Deuk mendes में लिखते हुए यह बतलाया था कि नये सोने का अधिकांश फ्रांस में खप गया। प्रत्यक्षरूप से सोने का बाजार भाव १५॥ १ से नीचे होगया। सोने की दर बढने लगी और वह चांदी को प्रचलन से हटाने लगी। सन् १८२२–१८५१ तक फ्रांस ने प्रतिवर्ष बहुत बड़े परिमाण में निर्यात की अपेक्षा चांदी का आयात किया। आयात बहुत अधिक था। सन्१८१२–६४तक दशा वैसी ही बनी रही। इसके पश्चात् आयात की अपेक्षा निर्यात का परिमाण बढ़ने लगा। जिन दिनों केलिफोर्निया में सोने की खानों की खोज हुई और उनमें से सोना निकाला जाने लगा फ्रांस से बहुत अधिक परिमाण में चांदी बाहर भेजी गई और उसका स्थान केलिफोर्निया के सोने ने ले लिया।

इस प्रकार फ्रांस की चांदी का उपयोग दूसरे देश में हुआ और वहां सोने की खपत होती गई। अत प्रस्तुत अंकों से

अधिक उनके अनुपात में कोई विशेष अन्तर न पड़ा, जो स्वाभाविक ही था।

चांदी की अपेक्षा सोना अधिक शीघ्रता से निकाला जाता था। फ्रांस में सोना खपता गया और उसका चांदी का स्टॉक खाली होता गया। शेविलियर के कथनानुसार इस प्रकार फ्रांस ने अन्य मूल्यवान् धातुओं के समक्ष सोने का भाव गिरने से बचाया। इसे द्विगुण माध्यम का क्षति पूरक कहते हैं। फ्रांस में उस धातु की खपत होने लगी जिसका परिमाण बढ रहा था और वह उस धातु का स्टॉक खाली करने लगा जिसका भाव उसकी समानता में बढने लगा। सोना निकालने की दर पहले की अपेक्षा बढ़ती सी जान पड़ने लगी। फ्रांसने सोनेकी मांग जारी रखी और सोने की बढ़ती हुई पूर्ति का खर्च पूरा करता रहा।

यह क्षति पूर्ति का कार्य अवसर विशेष के लिए ही उपयुक्त और समुचित है। फ्रांस में सब सोने की खपत हो गई, क्योंकि वहा चादी की मुद्रा प्रणाली थी। ऐसी दशा में अधिकांश सब सोना खप गया। इस प्रकार फ्रांस की द्विधातु पद्धति का बढते हुए सोने पर प्रभाव के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा जा सकता है कि —

(१) इसने दो धातुओं के बीच की बाजार भाव के अनुपात को स्थिर रखा।

(२) किसी सीमा तक इसने मूल्य को भी स्थिर रखा, क्योंकि जो चादी फ्रांस से बाहर भेजी गई उसके फिर से सिक्के

नहीं बने प्रत्युत् कुछ चादी पूर्व की ओर भेज दी गई और कुछ अन्य कामों में लगा दी गई । इस प्रकार कुछ धातु के सिक्कों में कमी हुई और मूल्य की बढती रोक ली गई ।

(३) इस पद्धति का कार्य अस्थायी रहा और ज्योंही फ्रास में प्रचलन से चादी हट गई त्योंही उसका कार्य बद होगया ।

(४) यद्यपि यह कार्य यूरुप के लिए लाभदायक था तथापि फ्रास के लिए वह बहुत खर्चीला था । फ्रास का न केवल धातु के परिवर्तन से होने वाली असुविधाओं को सहना पडता था प्रत्युत् तमाम सिक्को के पुनर्निर्माण का व्यय भी उसे उठाना पडा । सन् १८५० से १८५७ तक फ्रास ने १०६,०००,००० पौंड से अधिक मूल्य के सोने के सिक्के बनाये ।

यहा पर हम किसी प्रकार आश्चर्य नहीं कर सकते कि इग्लैंड ने फ्रास की पद्धति के पक्ष में अपने केवल स्वर्ण माध्यम को क्यो नहीं त्यागा ? उसने द्विधातु पद्धति अपने यहा भी क्यों न प्रचलित की ? इग्लैंड को छोड कर अन्य यूरोपीय राष्ट्रों ने जैसे बेलजियम स्विटजरलैंड और इटली आदि ने २२ दिसम्बर सन् १८६५को इस पद्धति को स्वीकार किया । यह सधि जो उपर्युक्त देशों में हुई थी इसका मुख्य उद्देश्य जैसा कि फ्रास के प्रधान मन्त्री ने कहा था आशिक चादी को विलुप्त करना था । फ्रास और उसके अनुयायियों ने जब कि मान में परिवर्तन होगया छोटे सिक्के न होने के कारण छोटे २ विनिमय के लिए बहुत सी

कठिनतायें उठायीं। एतदर्थ उनने अपने यहा चादी के चिह्न सिक्के बनाये। ५ फ्रैंक टुकड़ों का पूरा मूल्य रखा । इन सब देशो का सघ "लैटिन यूनियन सघ" कहलाता था । उसकी शर्तें इस प्रकार थीं —

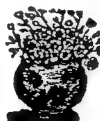
१—सोने के सिक्के और ९० शुद्धाश के पाँच फ्रैंक के टुकडे अनिश्चित परिमाण में ढाले जायें उन सबका वजन एकसा हो और जिन २ देशों ने इस सघ की शर्तों को माना है उन सब देशों में वे समान रूप से विनिमय माध्यम माने जायँ।

(२) छोटे २ चादी के सिक्के समानुपातिक तौल के थे, जो केवल ८३५ विशुद्धाश के होते थे। इस प्रकार ये चिन्ह सिक्के बना लिए गये और वे बाहर जाने से रोक लिए गये। ऐसे सिक्कों की सख्या प्रत्येक देश की जन सख्या के परिमाण से परिमित थी और जो देश उन्हें ढालता था वहा ५० फ्रैंक तक वे प्रचलन माध्यम माने जाते थे।

इस सन्धिका मुख्य उद्देश्य छोटे २ सिक्कों की रक्षा करना था, किन्तु मुश्किल से सधिपत्र पर हस्ताक्षर हो पाये थे कि घटना उपस्थिति हुई जिसके कारण बाजार का अनुपात १५३.१ फिर हो गया।

ये घटनायें दो प्रकार की थीं। एक तो नवादा तथा अमेरिका के पश्चिमी राज्यों में अधिक परिमाण में चादी का निकलना और दूसरे समस्त यूरुप में केवल स्वर्ण-माध्यम के अनुकूल आन्दो-

लन। ऐसी परिस्थिति में सन् १८६७ में पैरिस में एक अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस हुई जिसमें हालैंड को छोड़कर अन्य सब देशों ने स्वर्ण-माध्यम के पक्ष में अपनी सम्मति दी। जर्मनी के सन् १८७१ में अपने यहा के सिक्कों को फिर से ढलवा कर इस सम्मति के पक्ष में कार्य किया। उसके यहा चादी का बहुत सग्रह था और उसने अंग्रेजी पद्धति का आदर्श स्वीकार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि फल स्वरूप चादी भेजने का परिमाण बढ़गया और सिक्कों के लिए उसकी माग घट गई। इस पर सघ को बड़ी विकट स्थिति का सामना करना पड़ा था। उसे सोने के खर्चे से चांदी का बोझ उठाना पड़ा। लोग सोने के व्यवहार से परिचित हो गये थे। वे सोना छोड़कर चादी का बोझ नहीं ढोना चाहते थे। इग्लैंड तो कदापि अपनी पद्धति नहीं छोड़ना चाहता था। सन् १८७४ मे सघ की फिर एक बैठक हुई जिसमें निश्चय हुआ कि पाँच फ्रैंक के टुकड़ों का मुफ्त में ढालना बद कर दिया जाय और उनका प्रचलन परिमाण पूर्ण रूप से परिमित कर दिया जाय। यह सब होने पर भी द्विधातु पद्धति में खास सफली भूत न हुआ।



१२ वां प्रकरण ।

द्विधातु पद्धतिः २ अन्तर्राष्ट्रीय प्रक्रिया ।



न् १८७४ में चादी के सिक्कों की लेटिन सघ की टकसालें वन्द हो जाने पर हमारे सन्मुख द्विधातु का प्रश्न उपस्थित होता है । यह दूसरा रूप पहले से बिल्कुल भिन्न है । यद्यपि इसका उद्देश्य भी वही था अर्थात् चादी का मूल्य परिमाण सोने के समान ही हो, तथापि उसके प्रयोजन भिन्न थे और उनके लिये भिन्न २ उपाय काम मे लाये गये थे । सोने के मूल्य के एक ही परिमाण होने के कारण उस धातु की मूल्य—अभिवृद्धि का भय हो रहा था और इसी से व्यापारिक राष्ट्र चादी की अवस्था पर विचार करने को वाध्य हुए थे । जिस वात को फ्रास और उसके लेटिन मित्र न कर सके उसे अब सभ्य सरकार के सम्मिलित उद्योग ने सभव कर दिखाने का प्रयत्न किया ।

जर्मनी ने जव चादी के सिक्कों का वनाना वन्द किया तो उसके उत्तर के कतिपय पड़ौसी राष्ट्रों ने भी उसका अनुकरण किया । फ्रेंच—जर्मन युद्ध के उपरान्त जर्मनी ने एक दम नवीन क्षेत्र में प्रवेश किया और अपने सिक्कों को नये रूप में वनाने के

लिये अग्रसर हुआ और सन् १८७३ से ७९ तक उसने ७,०००,००० पौंड से अधिक चादी बाजार में फैला दी। हालैंड और स्कैंडीनेवियन सरकारों ने भी उसका अनुकरण किया। सन् १८७३ में अमेरिका ने तो अपने यहा चादी के सिक्के बनाना बन्द कर दिया। इस प्रकार चादी की माग कम होने, खानों से चादी अधिक परिमाण में निकलने तथा सिक्कों से चादी हट जाने के कारण उसके सोने के मूल्य का भाव गिर गया। चादी की ईंट (बुलियन) का भाव दो शताब्दी से अधिक तक ५ शि० या ५ शि० २ पैंस प्रति औंस रहा। सन् १८७३ में ५९$\frac{1}{4}$ पैंस, सन् १८७५ में ५६$\frac{7}{8}$ पैंस और सन् १८७६ में छ मास में उसका भाव ५६$\frac{1}{2}$ पैंस से ४८$\frac{3}{4}$ पैंस हो गया; यहा तक कि वह १ शि० ९ पैंस ही रह गया। चादी के स्वर्ण-मूल्य का परिमाण घट जाने से साधारण मूल्यों म भी कमी हो गयी।

इन दो कार्यों से, चादी के मूल्य में कमी होने तथा वस्तुओं के मूल्य में भी उतार होने पर द्वि-धातु-सिद्धान्त वादियों का आक्रमण सोने के परिमाण पर हुआ। सक्षेप में उनका कथन इस प्रकार है —"सिक्के बनाने के लिये सोने की इतनी ज्यादा माग हुई है कि जैसी पहले कभी न हुई थी कारण यही था कि उसे बाजार में फैली हुई चादी का स्थान ग्रहण करना था, सोने का मिलना क्रम २ से कम हो रहा है और ससार में इतना सोना एकत्र नहीं है कि आवश्यकता पूरी की जा सके। यह हुआ कि स्वीकृत सिद्धान्त के अनुसार, कि द्रव्य का मूल्य उसके प्रचलत

और उसके व्यवहार पर निर्भर है, सोने का भाव बढ गया। इससे यह स्पष्ट ही है कि चादी के एक वस्तु की तरह हो जाने तथा मूल्य का प्रमाण रूप न रहने के कारण स्वभावत ही उसने मूल्य के गिराव में भाग लिया। इस पर जो उपाय इस सिद्धान्त के लोगो ने बताये उनका मुख्य भाव यही था कि चादी के सिक्के फिर बनाये जाये और उनका प्रचलन निश्चित अश पर कानूनी रूप में हो। इससे प्रचलन का परिमाण भी बढेगा और जो भाव गिर गया है वह भी चढ जायेगा। जिन सिद्धान्तों पर इन लोगों ने अपना कार्य प्रारम्भ किया था, इनके विरोधी केवल सोने का प्रमाण मानने वालों ने इन बातों को मानने से इन्कार किया। सन् १८७३ व १८७४ मूल्य में बहुत ही वृद्धि हुई, और जो सिद्धान्त इस समय निर्धारित किये गये थे वे गलत सिद्ध हुये।

समय परिवर्तन शील है। एक बार जो भूल होजाती है उसका फल भोगना ही पडता है। उसी प्रकार यह भारी भूल देश को सहनी पडी, जो अनिवार्य थी। हा, उपायो द्वारा उसका परिहार अवश्य किया गया। पुनर्बार चादी के सिक्के बना कर उसे मूल्य का प्रमाण मानने मे एक धातु के समर्थको ने इन्कार किया। उनकी दृष्टि में पुराने मूल्य पर नवीन सिक्कों को पहुँचाना ठीक न था। उनकी माग भले ही बढ जाये, परन्तु उसकी भरती अधिक बढ़ गई थी कि पहले के समान उसका पुन हो जाना असभव था। थोडी सी कीमत बढने पर ही उसका उत्पादन बढाने की आवश्यकता उपस्थित हो जायेगी और इसका फलस्वरूप फिर उन

टकसालों को खोलना पड़ेगा जो अब तक बेकार समझी जाती थीं। इसके अतिरिक्त चांदी को उनने भारी समझ कर तथा प्रचलन और भुगतान मे इसका व्यवहार भद्दा व असुविधा जनक समझ कर इसका प्रचलन (सिक्कों के रूप में) अनावश्यक प्रमाणित किया। अतएव चांदी के सिक्के बनवाने के लिये फिर कारखाना खोलना इन लोगों ने अावश्यक सिद्ध किया। जब अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति द्वारा यह निश्चय हुआ कि चांदी प्रचलन मे फिर सिक्के का रूप धारण करे तो बहुमत ने उसे प्रत्यक्ष रूप मे अस्वीकार किया साथ ही उसे मन्तव्य को एक दम अनुपयोगी सिद्ध किया।

अब इग्लैंड क्या चाहता था, इस पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है। इग्लैंड इन सिद्धान्तों से विलग था, इग्लैंड में चांदी न तो निकलती थी और न वह किसी अंश मे उसे लेने को तयार था। फिर भी उसे स्वत नहीं तो, उसके पूर्वीय साम्राज्य भारत को इस उलटफेर से बहुत भारी धक्का पहुँचा। बहुधा लोगो के दिल मे यह गलत ख्याल रहता है कि मूल्य की अभिवृद्धि से लाभ होता है, तथापि हमारे लिये यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि हमें मूल्य के परिमाण को स्थायी करने का प्रयत्न करना चाहिये। द्रव्य के मूल्य मे किसी प्रकार का परिवर्तन होना हानि कारक है। यद्यपि यह निश्चित नहीं है तथापि यह सभव है कि इग्लैंड जैसे देश को, जहा विदेशी व्यापार की अधिकता है, मूल्य-वृद्धि के साथ द्रव्य का

मूल्य बढ़ जाना विशेष हानि कर नहीं हैं, जैसा कि इसके प्रतिकूल होने पर हो सकता है। उदाहरण के लिये सन् १८६० और १८७३ के बीच का समय अंग्रेजी इतिहास का सब से उन्नत समय था और फलत मूल्य बहुत बढ़ गया था। यहा हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि बढ़ते हुये मूल्य के होने वाली हानि को सहन करने के लिये इग्लैंड तैयार था। यह बात निर्बन्ध व्यापार प्रस्थापित होने के दूसरे ही वर्ष की है। और यद्यपि कुछ अंशों में यह सम्बन्ध नहीं माना जाता है तथापि यह मानना पडेगा कि विलायत का विदेश व्यापार इतना बढ़गया कि बढ़ते हुये भाव को रोकने की आशा न रही। मूल्य की ही वृद्धि नहीं हुई थी किन्तु मजदूरी भी बढ़ गयी थी। साथ ही खाद्य पदार्थों का भाव भी गिर गया था। कीमत की बढ़ता से मजदूरों तथा वेतन भोगियों को बडी कठिनता पडती है, क्योंकि मूल्य में तो वृद्धि हो जाती है पर वेतन में वृद्धि नही होती। कारण यही है कि वेतन की वृद्धि बहुत कम और बहुत धीरे होती है और मूल्य जल्द २ बढ़ जाता है। सन् १८७३ तक ये कठिनाइया लोगों को नहीं झेलनी पडीं, परन्तु हा, यदि इसके उपरात भी द्विधातु-सिद्धान्त-वादी अपना कार्यक्रम आगे बढ़ाते तो वास्तव में घोर कठिनाइया उपस्थित होतीं।

सन् १८७३ के उपरान्त बाजार भाव गिर जाने पर व्यापारिक समुदाय को जो हानि पहुँची वह वास्तविक हानि थी, क्योकि कारीगरों का सारा लाभ हानि के रूप मे परिवर्तित हो

जाता। आजकल के कारीगर आई हुई माग पर माल तैयार करते हैं और लाभ इतना कम होता है कि थोड़ा सा भाव भी गिरने पर वह लाभ हानि के रूप में परिवर्तित हो जाता है। उसी प्रकार यदि सदैव मूल्य में कमी होती रहे, भाव गिरता रहे तो व्यापार नाश को प्राप्त हो जायेगा उद्योग धन्दे वन्द हो जायेंगे और इसका परिणाम समस्त जाति पर हुए विना न रहेगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि यह हानि माग का रुख घटने से है और एक दम बाजार भाव चढ़ा देना इसका उपाय नहीं है।

द्विधातु सम्बन्धी आन्दोलन का इतिहास कतिपय सभाओं का कार्यक्रम ही है। ये सभाए फ्रास और अमेरिका के उदाहरण पर सन् १८७८ और ८१ में पैरिस तथा सन् १८९२ में ब्रुसेल्स में हुई। इनका उद्देश्य यह था कि चादी की मूल्य का प्रमाण मान कर उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति द्वारा प्रचलन मे रखा जाये। इग्लैंड मे भी एक विशेष समिति द्वारा इस विषय का विचार हुआ। यह समिति सन् १८७६ में चादी के मूल्य में कमी होने के कारणों की जाच के लिये हुई थी। इसके अतिरिक्त सन् १८८६ में एक राजकीय कमीशन वैठा था। इन सभाओं में अनेक बातों पर विचार हुआ पर कार्य में लाने योग्य कोई बात नहीं हुई। अन्तर्राष्ट्रीय सभा को असफलता प्राप्त होना इग्लैंड का कार्य था। लदन ससार में सोने के बाजार का केन्द्र स्थल है। वहा के लोगों ने द्विधातु प्रमाण मानने वालों की बात न सुनी। अगरेजी प्रतिनिधियों ने इस विषय पर सम्मति

दी कि चादी प्रचलन मे रखी जाये, परन्तु सर्वत्र पुनर्वार चादी के सिक्के जारी करने के पक्ष मे वे अपनी सम्मति न दे सके। इस प्रकार बहुत वर्षों तक द्विधातु के प्रश्न समस्त ससार के लिये एक विकट प्रश्न रहा। परन्तु सन् १८९७ और १८९८ मे यह हल चल शान्त हो गयी। राजनैतिक क्षेत्र में भी यह प्रश्न समाप्त हो चुका था। सन् १८७३ से मूल्य में जो बराबर कमी हो रही थी, वह सन् १८९९ और १८९७ से रुक गया और जैसा कि श्रीयुत सर बैक्स की सूची से विदित होता है वह निश्चित रूप से बढ गया। इस कार्य ने एक ओर के लोगो को शान्त कर दिया इधर अफ्रीका में सोने की खानें निकल आने पर दूसरी ओर भी शान्ति होगई।

द्विधातु–प्रमाण वादियों का यह कथन था कि वस्तुओं के मूल्य में गिराव होना सोने की कमी थी। परन्तु ट्रासवाल की खानों से सोना निकलने पर यह प्रस्ताव रद्द होगया, क्योंकि इन खानों द्वारा सोना बहुतायत से निकलता था यहा तक कि सन् १९१५ में ३८,६२७,४६१ पौंड का सोना निकला। एक दृष्टि से द्विधातु–प्रमाण वादियों की ही विजय हुई। सोने की व्यवहार-वृद्धि उस धातु की कमी का कारण हुई। परन्तु सोने की वृद्धि के साथ मूल्य में वृद्धि होना द्विधातु–सिद्धान्त वादियों के कथन की ही परिपुष्टि है। इन लोगों का सिद्धान्त विरोधियों की अपेक्षा न्यायकुल था। इग्लैंड के लिये यह प्रश्न सर्वथा न्याय की धरातल पर ही नहीं अपितु व्यापारिक भित्ति

नगर के प्रधार कार्यालय

विवरण	यथा क्रम दिन मगलवार २५ अगस्त सन् १९०८	शनिवार २२ अगस्त१९०८	स्टाक और एक्स-चेंज का निर्धारण दिन वृहस्पतवार २७ अगस्त १९०८
सिक्के (धातु)	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा
इग्लैंड बैंक के	१ १०	० ७५	० ४७
नाट हुंडी	० ६६	० ४५	० ४४
(७ दिन) हुंडी	० ०२	० ०४	० ०१
(७दिनसेऊपरी	० ७३	० ८४	० १६
चेक	९७ ४५	९७ ९३	९८ ८६
कुल	१०० ००	१०० ००	१०० ००

इसी प्रकार प्रान्तीय कार्यालयों के अक भी देखिये —

१३ वां प्रकरण

साख—नोट प्रकाशन के नियमोपनियम



अबतक हमने केवल धातुके ही सिक्को के विषय में विचार किया है और ऐसा करने मे केवल सोने को ही हमने विनिमय माध्यम मान लिया है। यह सर्वथा सत्य नहीं है। सोना सिक्के का एक अग है अथवा मूल्य परिमाण का एक अश मात्र है। स्वर्ण के इस आधार पर अनेक शर्तें और कायदे स्थित हैं अतएव मूल्य का परिमाण सोना और उसे देने की शर्तों का मिश्रण है। एक प्रकार से सोने को मूल्य का परिणाम बनाना भी अनुचित नहीं है, कारण कि इस परिणाम का कागजी हिस्सा नियमानुसार सोने के रूप में देना चाहिये। किन्तु हमे यह कदापि न भूल जाना चाहिये कि इन प्रतिज्ञाओं द्वारा मूल्य का परिणाम निश्चित किया जाता है। यदि हम प्रचलन में से कागजी द्रव्य का अस्तित्व मिटा दें तो मूल्य का अव शेष अर्थात् सिक्का बहुत बढ जायगा। एतदर्थ हम यह नहीं कह सकते कि विनिमय माध्यम केवल सोना ही है, यद्यपि उसका सम्पूर्ण आधार सोना ही है।

सन् १९१० में अमेरिका के नेशनल मोनेटरी कमीशन की ओर से श्री० आर डब्ल्यू. व्हेले ने पेरिस बैंक की लब्धि (प्राप्ति) मे नकद और साख के दो प्रकारों की खोज कर कुछ अक दिये है। वे इस प्रकार है —

नगर के प्रधार कार्यालय

विवरण	यथाक्रम दिन मंगलवार २४ अगस्त सन् १९०८	शनिवार २२ अगस्त १९०८	स्टाक और एक्स. चेंज का निर्धारण दिन बृहस्पतवार २७ अगस्त १९०८
सिक्के (धातु)	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा
इंगलैंड बैंक के	१ १०	० ७५	० ४७
नाट हुंडी	० ६६	० ४४	० ४४
(७ दिन) हुंडी	० ०२	० ०४	० ०१
(७दिनखेऊररी	० ७३	० ८४	० १६
चैक	९७ ४५	९७ ९३	९८ ८६
कुल	१०० ००	१०० ००	१०० ००

इसी प्रकार प्रान्तीय कार्यालयों के अंक भी देखिये —

प्रान्तीय कार्यालय ।

विवरण	यथाक्रम दिन मंगलवार २५ अगस्त सन् १९०८	शनिवार २२ अगस्त १९०८	स्टाक एक्सचेंज का निर्धारण दिवस गुरुवार २७ अगस्त १९०६
सिक्के	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा	प्रति सैकड़ा
इंग्लैंड बैंक के	८ ८७	७ २६	६ ७१
नोट हुन्डी (७ दिन की	३ ४७	३ २०	२ ६१
मुद्दती) हुंडी	० ४०	० १६	० ३६
(७दिनसेऊपरी	१ ४६	० ४२	१ ०४
चेक	८५ ७०	८८ ६०	८८ ६८
कुल	१०० ००	१०० ००	१००.००

इस विवरण से हमें ज्ञात होता है कि नियत दिवसों पर बैंकों ने अपने ग्राहकों के नाम उनके खाते में जो धन दिया उसमें सिक्के के रूप में १ प्रति सैकड़ा से भी न्यून था और प्रान्तों में ८ प्रति सैकड़ा मुश्किल से था। हा, यदि सब सौदों

का विचार किया जाये तो सिक्कों के उद्योग का औसत कहीं इससे भी अधिक हो, क्योंकि प्रत्येक सौदा जो हुंडी और चेक द्वारा निर्धारित होता है, उसमें बैंक की मध्यस्थता की आवश्यकता है। इसके विरुद्ध दैनिक व्यवहारों में जो नकद धन व्यय होता है उसमें बैंक की मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं होगी।

सिक्कों को निकाल कर जो अंश बचता है उसे "साख का उपकरण द्रव्य" कह सकते हैं। साख के भी अनेक अर्थ है और भिन्न २ आशय से उसका प्रयोग होता है। परन्तु यहां पर इसका 'भावी द्रव्य की प्राप्ति का वर्तमान अधिकार' अर्थ का द्योतक है। साख यह अधिकार है और यह भार इसका आवश्यकीय है। विविध प्रकार के कागजी द्रव्य इस बात के प्रमाण हैं। ये इस अधिकार के परिवर्तन करने के अर्थ हैं। शकरलाल ने बेणीप्रसाद को तीन महिने की मुद्दत का एक प्रामेसरी नोट दिया। बेणीप्रसाद तीन महिने समाप्त होने के पूर्वक तक १००) रुपये प्राप्त करने का अधिकार रखता है और शकरलाल भी वही भार अपने ऊपर अदायगी का रखता है यहां यह याद रखना चाहिये कि बेणीप्रसाद का अधिकार तुरन्त का है। यदि वह उससे छूटना चाहता है तो वह कागजी नोट को बेच सकता है उसे वह बैंकर के पास ले जाता है और बैंकर उससे व्याज और थोड़ा कमीशन लेकर बेच देता है।

साख का प्रत्येक उद्गम द्रव्य के अंश को बढ़ाता है जो प्रचलन में रखा जा सकता है और इसी लिये उसका मूल्य पर

प्रभाव पडता है । साख का उद्गम माल की माग वाली शक्ति को बढाता है अर्थात् वह माल की माग और जमा करने की शक्ति को बढता है और दूसरी वस्तुयें समान होने से, मूल्य बढ़ जाता है ।

विविध साखों का द्रव्य, जो प्रचलन में हैं, सोने मे अदा नहीं किया जाता, यद्यपि कानून के अनुसार इस प्रकार जमा किया जाना चाहिये । सोने का जो अश इग्लैंड में प्रचलन में है, उसके द्वारा वादे के हाजिर कागज का बहुत थोडा अश बटाया जा सकता है । साख का अधिकाश तो नवीन उद्गम और परिवर्तन में ही अदा हो जाता है । वास्तव में हमारे समस्त साम्पतिक कार्य और साख या वादे केवल विश्वास पर निर्भर हैं और जब २ इस विश्वास में कमी होती है, साम्पतिक झगडे हमारे दृष्टि गोचर होते हैं । समस्त ऋण वायदे नामे के अतिरिक्त कानून व सोने या इग्लैंड बैंक के नोट द्वारा अदा किया जा सकता है और इस के लिये उसी समय सोना मागा जा सकता है । परन्तु वादे में यह साख के द्रव्य अथवा कागजी द्रव्य से अदा कर सकते हैं जो सर्वत्र स्वीकार किया जा सकता है । हम सोना पाने के अधिकार से जमा करते हैं और उसका बहुत थोड़ा अश सोने में अदा होता है ।

साख के द्रव्य का अश जो सोने के मूल्य पर तैयार होता है निश्चित अश नहीं है साथ ही यह अनियमित भी नहीं है । व्यापारिक ससार को सब से बडा भय साख के द्रव्य की बहुत बढ़ी

सख्या मे बनाने में है, जिसका परिणाम अत्यन्त हानि कारक होता है। व्यापारिक दशा सरकार और प्रजा पारस्परिक विश्वास तथा सब से अधिक व्यापारिक युक्तियों की उपस्थिति व अनुपस्थिति के अनुसार तादाद में फर्क पड़ता रहता है।

बैंक के नोट का रुपया उसके लाने वाले को दिया जाता है और उनका परिवर्तन एक के पास से दूसरे के पास बिना किसी शर्त के स्वतन्त्रता पूर्वक हो सकता है। विविध प्रकार के लेख पत्र या दस्तावेजें जो सोना चाहने अर्थात् सोना ले सकने के प्रमाण हैं अथवा इस प्रकार के अधिकार परिवर्तिन करने के प्रमाण हैं, और जो साधारण व साख के यन्त्र या नियन्त्रक हैं दो भागों मे विभक्त हैं, एक तो बैंक नोट और गवर्नमेंट नोट और दूसरे चेक, बिल, प्रामिसरी नोट इत्यादि। इन दोनों में बहुत अन्तर है। दूसरे प्रकार की श्रेणी में कागजी द्रव्य के भिन्न २ रूप हैं, जो निश्चित समय के बाद तक कदाचित ही बने रहते हैं। पर जैसा कि ऊपर लिख आये हैं बैंक के नोटों का रुपया उसके लाने वाले को दिया जाता है और उनका परिवर्तन परस्पर बिना किसी व्याघात अथवा बन्धन के हो सकता है। यही नहीं वे बहुधा लीगल टेंडर हैं। जो बैंक नोट निकालता है उसके पास वे वर्षों पहले अदायगी के लिये उपस्थित किये जाते हैं।

इस अन्तर का परिणाम यह है कि बैंक के नोट निकालने के लिये कठोर और सुनिश्चित नियम की आवश्यकता पड़ती है।

और दूसरी श्रेणी के कायदे के कागज जो व्यापारिक रीति नीति द्वारा बने हों। और इस प्रकार कानूनी सरक्षण भिन्न २ श्रेणी के लिये, जैसा कि अनुभव प्रकट करता हैं, होना आवश्यकीय है। उनके निकालने के लिये दूसरी श्रेणी पर नियम लगाना सरल न था, क्योंकि व्यापारिक समाज व्यापारिक साख पर किसी प्रकार के नियमोपनियम बरदाश्त नहीं कर सकता। इसके नियमादि तो व्यापारिक ढग और रिवाज पर ही निर्भर है। ये व्यापार के बडे भारी अनुभव के द्वारा रचे जाते है। बैंक नोट के विषय में एक दम दूसरी बात है। इनका प्रचलन तो सिक्कों के समान होता है। जिस प्रकार सिक्के स्वीकार किये जाते है उसी प्रकार अधिकाश में ये भी लिये जाते हैं। एक बार रिवाज द्वारा स्वीकृत हो जाना चाहिये फिर तो लोग यह भी नहीं देखते कि जिस बैंक ने उन्हे निकाला है, क्या वह उसकी सम्पूर्ण प्रतिज्ञाओं को पूरी कर सकता है या नहीं। ये बिना किसी बाधा के स्वतन्त्र रूपेण ले लिये जाते है। और ये उस समय तक बराबर लिये जायेंगे जब तक बैंक बिना किसी सूचना के उनका रुपया देना बद कर दे। अठारहवीं सदी के बैंक के इतिहास में बैंक नोट के सम्बन्ध मे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। ये अनाधिकारी व्यक्ति द्वारा निकाले गये और स्वतन्त्रता पूर्वक उनका प्रचलन होता रहा। इग्लैंट बैंक के चार्टर द्वारा बडे २ बैंकों मे से ही नहीं प्रत्युत् छोटे२ बैंकों ने भी नोट प्रचालित कर दिये। परिणाम यह हुआ कि अन्त में साख पर बहुत भारी धक्का

पहुँचा और अनेक छोटे बैंक हताश हो गये और उन्हें अपने पट बद करने पडे।

इग्लैंड में अर्थशास्त्रियों की एक नि शुल्क पाठशाला है जिसका नाम है—फ्री बैंकिंग स्कूल। इन अर्थशास्त्रियों का कथन है कि नोट निकालने के काम में किसी प्रकार का बन्धन न डाला जाये। हा, कानूनी शर्त मे जब कि उनकी अदायगी सिक्कों द्वारा हो तो यह बात न रखी जावे। किन्तु इनमतो का सम्प्रति निरादर हो रहा है और हम देखते है कि सर्वत्र लोगों की यह इच्छा है कि समस्त सभ्य देशों मे नोटों के निकालने में कुछ वन्धन होना जरूरी है।

इसके पूर्व कि हम नोट निकालने के नियमों पर विचार कर परिवर्तनीय अपरिवर्तनीय नोटो के विषय मे कुछ बाते बतला देना आवश्यक है। सक्षेप में इतनाही जान लेना पर्याप्त हेकि अपरिवर्तनीय नोट खराब है और राष्ट्र के लिये हानिकर हैं। नोट प्रकाशन में कमजोरी तब होती है जब वे नियत सख्या से अधिक निकाले जाते हैं। जिस से करन्सी का मूल्य घट जाता है और मूल्य–परिमाण की स्थिरता को भी धक्का पहुचता है। नियत सख्या से अधिक वाले नोट परिवर्तित रूप में अच्छे है अपरिवर्तनीय कागज अर्थात् कागजी रुपया अदायगी कानूनन सोने या सिक्कों द्वारा नहीं की जा सकती, अपना मूल्य बनाये रखे और जबतक उस का परिमाण निर्दिष्ट है तब तक वह द्रव्य के कार्यों को पूरा करे। परन्तु

अनुभव से यह बात प्रगट होती है कि वर्तमान समय मे इस प्रकार की शक्ति का प्रयोग करने अर्थात् अपरिवर्तनीय कागज निकालने की शक्ति किसी समय के लिये भी काम में लायी जा सकती और इस शक्ति की निंदा इतनी बढगई है कि उसका रोकना कठिन होरहा है।

अतएव प्रधान गुण नोट प्रकाशन का यह है कि उसका भुगतान सिक्कों में होना चाहिये। अब यह प्रश्न उठता हे कि इस परिवर्तनशीलता पर किस प्रकार विश्वास दिलाय जाये। यहा पर हमे बैंक की ऋण भर देने की योग्यता का ही ध्यान नहीं रखना पडेगा प्रत्युत् नोट के तुरत भुगतान का भी ध्यान रखना पडेगा। नोट एक प्रकार का वायदा है जो आवश्यकता पडने पर सिक्कों के रूप मे परिवर्तिन किया जा सकता है। नोट प्रकाशन के आर्थिक बन्धन पर बहुत कुछ प्रकाश डाला जा चुका है। कहा जाता हे कि नोट चलाने के लिए उतने मूल्य की जमीन अथवा अन्य प्रकार की सम्पति होना जरूरी है। पर जब सिक्कों से नोटों के परिवर्तन की बात आ जाती है तो सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं।

परिवर्तनीयता का विश्वास दिलाने का सब से अच्छा उपाय तो यह है कि जितने के नोट निकाले जायें उतने मूल्य का सोना बैंक में सुरक्षित रहे। इसे 'साधारण सरक्षित प्रणाली' कहते हैं। इसमें अनेक कठिनाइया है जो दूर की जा सकती है, क्योंकि प्रारभ

में जब साख प्रणाली चली ही थी तब एम्सटर्डम में बैंक ने यही प्रथा प्रचलित की थी। परन्तु आजकल कागजी द्रव्यों या प्रचलन सिक्कों के स्थान की पूर्ति करना ही नहीं है प्रत्युत् अधिक भार आदि की असुविधा से बचाने के अतिरिक्त नोट विनिमय कार्यमें सुलभता पूर्वक विदेशभी भेजे जा सकते हैं। नोटका सरक्षिन सोना बिना किसी अर्थ के पड़ा रहेगा। हम जानते हैं कि कुछ सोना इस कार्य के लिए अवश्य सुरक्षित रखना चाहिये किन्तु सम्पूर्ण सोना बिना अर्थ के रखना और यदि कुछ सोना कार्य में लगाने के लिए उतने ही मूल्य के प्रचलित नोटों को कम करना, ये बातें आज कल की प्रणाली के लिये व्यर्थ है। स्वर्ण सुरक्षण-प्रथा में सुधार द्वारा जो नई पद्धति प्रचलित की गई है उसके द्वारा इस प्रकार के बैंक नियमित संख्या में नोट निकाल सकते हैं और उन्हें संरक्षण में सोना नहीं रखना पड़ता। यह अंग्रेजी पद्धति है जो सन् १८४४ के बैंक चार्टर एक्ट की धारा के अनुसार जारी है। जर्मनी ने भी कतिपय आवश्यक परिवर्तन के पश्चात् हमारा अनुकरण किया है। अंग्रेजी कानून एक ऐसी कड़ी हद बांध देता है कि जिसके कारण बैंक नोट नहीं निकाल सकते। यदि वे निकाले भी तो उन्हें परिवर्तन में उतने ही मूल्य का सोना रखना पड़ेगा। परन्तु जर्मनी ने कुछ शर्तों द्वारा कई सुविधायें रखी हैं जिसके द्वारा वे इस परिस्थिति में परिवर्तन कर निश्चित संख्या में वृद्धि कर सकते हैं। इसके पूर्व युद्ध ने इन बन्धनों को ढीला कर दिया जर्मनी का इम्पीरियल बैंक हुंडियों के

अतिरिक्त ५५०,०००,००० मार्क तक के नोट चला सकता था पर इससे अधिक के लिए उसे कोष में उतना ही सोना रखना पड़ता था। इस प्रकार नोटों में बढ़ती करने के लिए बैंक सरकार को ५ प्रति सैकड़ा देकर नोट चला सकते थे मगर साथ ही शर्त यह थी कि उसके समीप उतने नोटों के बराबर मूल्य का $\frac{1}{3}$ भाग सोना अवश्य होना चाहिये था।

अमेरिका की पद्धति बिल्कुल भिन्न है। सन् १९१३ के सयुक्त कोष का एक्ट पास होने तक युक्त प्रदेश अमेरिका के प्रचलन मे सोने चादी के खजाने के प्रमाणपत्र के अतिरिक्त, वहा के प्रचलित सिक्कों के नोट थे जो "ग्रीन बैंक" कहलाते थे और जो अमेरिकन सिविलवार के पहले चलाये गये थे और थोड़े परिमाण में ट्रेजरी नोट थे जो सन् १८९० के एक्ट के अनुसार प्रचलित थे। इसके अतिरिक्त नेशनल बैंक के भी नोट निकले।

'ग्रीन बैंक्स' नोटो का द्रव्य परिमाण बहुत वर्षों से निश्चित कर दिया गया था अतएव राष्ट्र का ध्यान नेशनल बैंक की ओर गया जहा नवीन पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ था। यह पद्धति राष्ट्रीय ऋण पर निर्धारित भी थी। प्रत्येक राष्ट्रीय बैंक को अपने यहा नोटों के निश्चित परिमाण के अनुकूल युक्त प्रदेश की सरकार के खजाने के बौंडो (बन्धकों) को खरीद कर जमा रखना पड़ता था। इसका परिणाम

ह हुआ कि नोट प्रचलन अधिकाश में सुव्यवस्थित रखा जा का किन्तु देश के व्यापार की सदैव परिवर्तित आवश्यकता को ह पूर्ण न कर सका। यह पद्धति बड़ी कठोर थी और वह इस लए और भी बढ़गई थी कि बैंकिंग के कानून के अनुसार प्रत्येक ष्ट्रीय बैंक को यदि वह किसी अच्छे नगर में है तो २५ प्रति कड़ा और यदि अन्यत्र है तो १५ प्रति सैकड़ा अपनी कुल रकम ा नकद सिक्कों के रूप में रखना अनिवार्य था। अतएव यदि किसी समय द्रव्य की कोई विशेष आवश्यकता आ पड़ती तो न केवल और नोटों का प्रचलन असभव था प्रत्युत् वह माग मूल रकमसे पूरी की जाती थी। इसीसे बैंकमें ऋण और साख के साधारण साधनों की आवश्यकता पड़ी। इग्लैंड में इस कठोर पद्धति का अनुभव नहीं किया गया क्योंकि वहा नोटों की माग सर्वथा एक सी रहती है। परन्तु अमेरिका की हर एक फसल पर नये द्रव्य की आवश्यकता पड़ती है जो चेकों द्वारा पूरी नहीं की सकती। अतएव वहा नोटों की वृद्धिशील प्रणाली की बहुत आवश्यकता पड़ती है। इसके विरुद्ध जब कभी किसी फसल पर माग बहुत थोड़ी होती है तो तब वृहत् परिणाम में द्रव्य का सग्रह जो व्यर्थ निरुपयोगी रहता है और जिसे बैंक व्यर्थ प्रच-लन में लगा रहे हैं, एक ऐसी कठिनता है जो देश के आर्थिक कल्याण में बड़ी बाधक है।

सन् १९१३ के सयुक्त कोष के कानून के अनुसार अमेरिका के मुख्य नगरों में प्राय १२ सयुक्त-कोष

–बैंक स्थापित किए गए, ये बैंक सयुक्त कोष बोर्ड की व्यवस्था में थे। इस बोर्ड को अधिकार था कि स्वेच्छापूर्वक इन बैंकों को नोट दे जो अमेरिकन सरकार द्वारा बाधित थे। साथ ही इन नोटों के लिए उतने ही मूल्य के प्रामिसरी नोट और बिल, जो डिस्काउट पर लिए जा सकें, रखना आवश्यक था। साथ ही इस जमा पूंजी में ४० प्रति शत सोना होना भी आवश्यक था। हा, किसी ग्रेजुएटेड टैक्स के दे देने पर यह सोने का परिमाण कम भी किया जा सकता था। यह नियम जर्मन पद्धति से ग्रहण किया गया है। राष्ट्रीय बैंकों के अधिकार में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया गया। उनके प्रचारित बॉंड सयुक्त कोष बैंक खरीदकर उनके पूरे मूल्य इतने नोट प्रचलन मे निकाल सकते थे। इस कार्य से विदित होता है कि राष्ट्रीय बैक का रहा सहा अधिकार सयुक्त कोष बैंकों को दे देने की इच्छा है। फ्रास देशीय पद्धति 'अधिकतम प्रचलन' पद्धति द्वारा नियमित है। यह अधिकतम द्रव्य–परिमाण युद्ध के पूर्व ६,४००,०००,००० फ्रैंक था। फ्रास की स्थिति एक अपवाद है। वहा धातु के सिक्कों का का ही प्रचलन बहुत बडी सख्या में है इसके अतिरिक्त वहा के बैंकों में भी बहुत सरक्षित द्रव्य है।



१४ वां प्रकरण

नगद भुगतान के लिए बैंक आफ़ इंग्लैंड के बंधन



ग्लैंड ने केवल एक बार अपरिवर्तित कागजी सिक्कों के लाभा लाभ का मजा चक्खा है वह समय उल्लेखनीय है। केवल इसी लिए नहीं कि इग्लैंड को उससे अनुभव प्राप्त हुआ किन्तु इसलिये कि इस श्रेणी के जिज्ञासु पाठक बहुत कुछ बातें उससे सीख कर अपने २ देश की करन्सी के सुधार के विषय में भी विचार करें।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ का वर्ष इग्लैंड के इतिहास में विशेष उल्लेखनीय है। इग्लैंड क्रांतिकारी फ्रांस के विरुद्ध यूरोपियन संघ का मुखिया था और उसे इसका मुकाबिला करने के लिए अधिक धन संग्रह की आवश्यकता थी। मिस्टर पिट का लगातार विदेश में हुंडिया भेजना अपनी शक्ति को कम करना और देश की आर्थिक स्थिति को धक्का पहुंचाना था। सोने की माग प्रायः दो प्रकार से होती है। यह माग प्रथम घर की होती है जिसके द्वारा साख की अस्थायी न कामयाबी से जो माग हो रही है उसकी पूर्ति हो। इस विषय में बैंक आफ इग्लैंड पर बड़े २ बन्धन लगाये गये। देश ने जब अन्य कागजी द्रव्य को ...

नहीं किया तब भी लोगोंने इग्लैंड बैंक के नोटों को हृदय से स्वीका
किया और आवश्यकता पड़ने पर बैंक की सहायता पर विश्वास भ
किया। बैंक ने भी अपने कर्त्तव्य को सम्हाला और अपने
अनुभव द्वारा सीखा कि लोगों का भय अबन्धन और उदारत
प्रकट करने से दूर किया जा सकता है। दूसरी माग विदेश
की माग कही जा सकती हैं। यह माग ऐसे समय मे
आपत्ति दायक है। इस विषय में बैंक की प्रचलित नीति
यह है कि अपने नोटों का निकालना और कर्ज देना बन्द कर
दे। इससे साख कायम रहती है। ब्याज का भाव चढ़ जाने से
विदेश का सोना देश में चला आता है और इस तरह प्रवाह
रुक जाता है।

सन् १९१७ में देश और विदेश दोनों स्थानों से सोने
की माग हुई। इस पर श्रीयुत् पिट्स ने इग्लैंडबैंक के चार्टर का नियम
परिवर्तित कर दिया। आपने बेंक को अपनी पूँजी से बाहर
सरकार को कर्ज देना मना कर दिया जो सरकार सदैव चेक
या हुन्डी बैंक पर करा करती थी और बैंक को जबरन उन्हें स्वीकार
करना पड़ता था। इसी समय इग्लैंड के उत्तरीय प्रदेश न्यू
कासल में फरासीसियों के आ जाने के समाचार ने जो लदन में
एक दम फैल गया था विकट स्थिति उपस्थित कर दी। बैंकों
के डायरेक्टरों की बुद्धिमता इस पर समाप्त हो चुकी थी। एक ओर
तो बिना किसी बन्धन के उधार धन देने की नीति को जारी कर
इस स्थिति को परिमार्जित करने का उपाय सोच रहे थे

तो दूसरी ओर पिट साहब के उधार देने वालों ने अपने ऐसे हाथ सिकोड़े और सोने को इतने न्यून अंश पर पहुंचा दिया कि ऊपर की नीति को कार्य में परिणित करना कठिन होगया। इन कठिनाइयों को परिमार्जित करने के लिए २५ फरवरी सन् १८०७ को कौंसिलने एक सूचना निकाली। जिस के अनुसार कुछ शर्तों को छोड़ कर बैंक को नगद धन देने से मना किया गया। तदुपरात् हानिपूर्ति का कानून भी शीघ्र ही पास हुआ। जो उसी वर्ष के जून मास तक जारी रहा था। इस कानून की दया पर एक दम कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि जिसने इंग्लैंड बैंक के नोटों को कानूनी सिक्के के बाहर उठाकर रख दिया और उनके न लेने से इन्कार करने पर उसमें कोई दंड आदि भी नहीं रक्खा। इस समय इंग्लैंड में असंतोष की हवा खूब फैली। बैंक सोना सरक्षित रखने से मुक्त कर दिया गया था और वह स्वतन्त्रता पूर्वक उधार दे सकता था। ऐसे अवसर पर साख की रही सही पूर्ति समाप्त हो गई। पार्लियामेन्ट के हाउस आफकामंस की एक कमेटी ने बैंक का निरीक्षण किया और उसकी स्थिति सर्वांश मे मजबूत पाई। उसे धीरे २ भुगतान के लिए गिन्नी के स्थान पर एक और दो पौंड के नोट निकालने का अधिकार प्रदान किया गया।

कुछ समय तक करन्सी की हालत बिलकुल ठीक प्रतीत हुई और रोक आदि की कोई कठिनाइयां नहीं दिखाई दीं। सन् १८०९ के करीब किसी प्रकार दो बातें विशेष ध्यान आकर्षित करने लगीं।



पहली बात सोने का बाजार भाव कारखाने और टकसाल मे बहुत ज्यादा बढ़ जाने की और दूसरी विदेशी प्रचलन मे लगातार घटी होने की थी। सोने का बाजार भाव सन् १८०१ में ४ पौंड ५ शिलिंग प्रति औंस होगया था और टकसाल का भाव ३ पौंड १० शिलिंग १०½ पेंस था। इससे यह विदित होता है कि लोग एक औंस सोने के लिये ४ पौंड ५ शिलिंग देने को तैयार थे, जब कि वह सोना टकसाल में सिक्के ढलवाने लिए ले जाया जाता तो ३ पौंड १० शिलिंग १०½ पेंस का रह जाता। हमबर्ग का एक्सचेंज जो इगलेंड के एक्सचेंजों का प्रधान केन्द्र है उस का भाव असली मूल्य से १४ पौंड प्रति सैकड़ा गिर गया था। यदि लदन के एक मनुष्य को कर्जा हमबर्ग में किसी व्यक्ति को देना है तो उसे अपने कर्ज के द्रव्य मे १४ पेंस प्रति सैकडा लदन की अपेक्षा अधिक देना पड़ेगा। लदन मे हमबर्ग तक सोने का जहाज द्वारा खर्च ७ पेंस पड़ता था। फिर ७ पेंस अधिक किस बात में जोड़े गये? इस विषय का उत्तर लार्ड किंग का कानून इस प्रकार देता है कि, "यदि धातु और कागज के सिक्के बराबर प्रचलन मे हो और बाजार भाव टकसाल से ज्यादा बढ़ जाय और विदेशी एक्सचेंज में मार्ग व्यय से अधिक उसका भाव गिर जाय तो यह अन्तर टकसाल और बाजार भाव के कागजी प्रचलनकी घटी प्रकट करता है।" यह बात प्रत्यक्ष रूपेण गलत दिखाई पड़ती है कि लोग ५ पौंड का सोना खरीदें जो टकसाल में केवल, ३

पौंड १० शिलिंग १०½ पेंस सिक्के बनाने पर रह जाता है। बात यह है कि, सोने की कीमत कागजी कीमत थी। एक ऋण में लंदन की अपेक्षा हमबर्ग में अधिक देना पड़ता था क्योंकि कागज बाहर नहीं जायगा और लंदन में वही ऋण इंग्लैंड बैंक के नोटों में अदा किया जायगा। यह सिद्धान्त उस समय बिलकुल अस्वीकृत ठहराया गया। यह बताया गया कि बैंक के नोट कानूनी सिक्के नहीं थे और इस लिए वे अस्थाई अपरिवर्तित थे। कोई उन्हें लेने के लिये बाध्य नहीं था। सन् १७९७ के कानून के अनुसार बैंक के नोट देना सोना देने के समान समझा जाय यदि लेने और देने वाले, दोनों इस प्रकार सहमत हों। नोट का प्रचलन बिना किसी बंधनके होता रहा। उनके चलन में किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला गया। चारों ओर से लोगों ने इंग्लैंड बैंक पर अपना विश्वास प्रकट किया। तब किस प्रकार नोट के मूल्य में घटी हो सकती थी? इसी घटी का कारण जो न सोचा गया था वह यह था कि अन्य वस्तुएं समान होने पर द्रव्य का मूल्य प्रचलन की संख्या पर निर्भर है। नोट पर बट्टा लगता था क्योंकि वे नियत संख्या से ऊपर निकाले जा रहे थे। अपरिवर्तित कागजी द्रव्य का बैंक या सरकार द्वारा निकालना जिनकी स्थिति सर्व प्रकार अच्छी न हो, उस समय जनसाधारण के हृदय में मजबूती का विश्वास घट जाता है और तब मूल्य अर्थात् करन्सी के मोल होने की शक्ति अवश्य घटेगी। नकद भुगतान को रोकने के लिये जनता सिक्के इकट्ठा कर कर

रखने लगी । इग्लैंड बैंक में जमा किया सोना सर्वांश में नहीं निकाला जा सकता था उसका अधिक स्थान नोटों ही ने ले लिया और जब अधिक निकाले गये तब करन्सी और भी बढ गई और कुछ अश उसका बाहर भी चला गया । यह अश सोने और चादी के सिक्कों का था क्योंकि विदेशी लोग अपरिवर्तित कागज कब लेने लगे जब कि सोना एक्सचैंज के साधारण प्रवाहों द्वारा गायब होगया। तब और अधिक नोट निकालना करसी के घटने का परिणाम होता है जो कि इस अवसर पर सब कागज रूप में थी और कीमत जो लगाई गई थी वह कागज की कीमत थी । सन् १८०३ और १८०६ तक घटी एक दम गायब हो गई और बाजार भाव कभी ४ पौंड से ऊपर नहीं चढ़ा । किन्तु सन् १८०६ और १८१० में ऐसा खतरा हुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था ।

इस खतरे को दूर करनेके लिए सन् १८१० में हाउस आफ कामस ने एक कमेटी नियत की कि वह सोने की मूल्य वृद्धि पर विचार करें । कमेटी ने अपना विवरण बहुत अनुसन्धान के पश्चात् प्रकाशित किया जो अत्यन्त महत्व पूर्ण है । जो विवरण अपरिवर्तित करन्सी के शासन सम्बन्धी बातों को भली प्रकार से प्रकट करता है ।

विवरण प्रारम्भ मे अपने सन्मुख अपरिवर्तित प्रश्नों पर ५ बातें रखता है —

१—टकसाल के सोने का मूल्य ३ पौंड १७ शिलिंग १०½ पेंस प्रति औंस है ।

२—सन् १८१० के प्रारम्भ में सोने का बाजार भाव ४ पौंड १० शिलिंग और ४ पौंड १२ शिलिंग प्रति औंस के बीच का था।

३—हमबर्ग और अमस्टरडम के एक्सचेंज भवन में प्रचलन के असली मूल्य से १६ और २० प्रति सैकड़ा घटी हो गई थी।

४—बैंक आफ इंगलैंड और प्रादेशिक बैंकों के नोटों की संख्या बढ़ गई थी।

५—सोना प्रचलन में से गायब होगया था यद्यपि देश से सर्वत नहीं हुआ था।

कमेटी का निर्णय को सब लोगों ने स्वीकार ठहराया। कमेटी ने अपने विवरण में इन ऊपरी बातों पर अपनी राय निम्न लिखित प्रकट की —

१—एक्सचेंजकी धातुओंमें कभी विदेश भेजने के लिए उसके मार्गव्यय में कभी अन्तर नहीं पड़ सकता और न उसके बीमाही में इतना अन्तर देने वाला व्यय ही होता है।

सावरेन का मूल्य फ्लैनिश सिक्के में प्राय ३४½ फ्लैनिश शिलिंग के बराबर था। यह दोनों ओर की धातु का मूल्य था जो चांदी के हाजिर भाव के अनुसार लगाया गया था जिसे "प्रचलन का सम भाव" के नाम से दोनों स्थान में अर्थात् हमबर्ग और लन्दन में कहते थे।

कमेटी ने ऋण के विषय में सम्मति दी कि लन्दन वालों को हमबर्ग मे अपना ऋण देना है उस में अवश्य कुछ अन्तर । क्योंकि वह ऋण लन्दन में जहा सग्रह किया जायगा प्रकार से न्यून हो । कमेटी ने राय दी कि ऋण विशेष होना चाहिए । उस धन में केवल मार्गव्यय और सम्मि- किया जाय। इस से ज्यादा किसी हालत मे ऋण के धन की न बढना चाहिए । इस व्यय का हिसाब लगाते हुये जो से ज्यादा ७ प्रति सैकडा होगा अर्थात् प्रत्येक पौंड पर फ्लेनिश शिलिंग हुआ।

इसके अलावा प्रचलन के भाव के अनुसार एक पौंड का जो लन्दन में है वह हमबर्ग में २९ फ्लेनिश शिलिग में बेंचा था ।

इस विषय में कमेटी ने अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकट —

जो अन्तर इस समय है या इससे अधिक भी हो जिसका व इस समय नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यह अन्तर ड बैंक के अपरिवर्तित नोटों के अधिक परिमाण मे निकालने कारण था । एक ऋण जो लन्दन में देना है वह वहा के ज में भुगताया जायगा यह बात बिल्कुल स्पष्ट है । यदि सोने में ऋण देना चाहे तो उसे सोना मोल लेना पडेगा एक पौंड का कागजी नोट १ पौंड सोने के मूल्य से बहुत था ।

तीसरा मन्तव्य इस प्रकार समिति उपस्थित करती है —

सोने का बाजार भाव किसी अंश तक टकसाल के भाव से नहीं बढ सकता। यह तब हो सकता है कि जब करन्सी जिसमें कि सोना जमा किया गया है और उसका भाव नियत किया गया है, वह सिक्के के पूरे मूल्य से नीचे घट गई हो।

चौथा मन्तव्य तीसरे का न्यायानुकूल उत्तर था —
४— कमेटी कहती है कि सोने के बाजार की कीमत और टकसाल की कीमत का अन्तर भली प्रकार से बैंक आफ इंग्लैंड के नोटों की घटी का अन्तर बताता है। कमेटी आगे चल कर अपील करती है कि उसकी सम्मति में जबतक नगद भुगतान में बन्धन रहेगा तब तक बैंक आफ इंग्लैंड अपने नोटों को निकाल कर एक्सचैंज द्वारा उनकी रक्षा नहीं कर सकता।

अन्त मे कमेटी जोरदार शब्दों मे सम्मति देती है कि नगद भुगतान शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाय। कमेटी की राय है कि कभी भी अधिक परिमाण में कागजी प्रचलन स्थायी तथा अस्थायी रूप मे बढ़ा कर रक्षा नहीं की जा सकती है। नगद भुगतान किसी हालत में भी नहीं रोकना चाहिये।

कमेटी की राय को पार्लियामेन्ट ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उस समय दो दल होगये थे और वे एक दूसरे के विरुद्ध थे। उस समय युद्ध भी जारी था। किन्तु सन् १८१३ में नेपो-

लियन का युद्ध समाप्त हुआ और लापाक्षिग में सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर हुये। इसके उपरान्त खूब ही सट्टा चला जो व्यापार को एकदम गिरा देने वाला था। दो वर्ष में २८ बैंक अपना दिवाला निकाल चुके थे। सौ बैंक बर्बाद होगये और उनके नोटों की बाजार मे कोई साख नही रही। प्रदेशिक बैंकों पर सन् १७६७ का कानून नगद भुगतान के विषय का लागू नहीं था और ये लोग अपना कर्ज बैंक के नोटो मे देने लगे और इस प्रकार उनका प्रचलन बढ गया। उनके प्रचलन की सख्या यहा तक बढ गई कि उसका कोई हिसाब सरकारी या गैर सरकारी रूप से नहीं लगाया गया। सन् १८१४ की असफलता ने प्रदेशिक बैंकों में भी प्रचलन की सख्या न्यून करदी। यही नहीं इस न्यूनता द्वारा सोने की कीमत को भी गिरा दिया। अर्थात् सन् १८१६ में सोने का बाजार भाव ३ पौंड १८ शि० ६ पैंस होगया और पैरिस और हमबर्ग के प्रचलन उस समय समभाव से ऊपर बढ गये।

बैंक आफ इग्लैंड को साख को अब होश हुआ। उसने नोटो के बदले सोना देना जारी कर दिया। तब से इग्लैंड ने अपारिवर्तित कागजी सिक्का निकालने का कभी विचार नहीं किया।



१५ वां प्रकरण।

बैंक चार्टर एक्ट—१८४४



न् १८४४ में बैंक चार्टर एक्ट द्वारा नोटों के वदले में सोना देना अस्वीकृत ठहराया गया। इस कानून के पास होने पर बाजार मे नोटों क विपय में वड़ी गड बड़ी फैल गई थी। इस गड़बडी ने बैंक श्राफ इगलैंड को अपना कार्य करना कठिन कर दिया। यह शिकायत बैक आफ इग्लैंट तथा प्रादेशिक बैंक दोनो के सम्बन्ध में अधिक नोट निकालने के विपय में थी। तदुपरान्त दो निरुद्ध सिद्धान्त सामने आये। अपने २ सिद्धान्त के पक्ष वाले निज के सिद्धान्तानुसार नोट निकाला चाहते थे। ये दो सिद्धान्त 'मुद्रा प्रचलन सिद्धान्त' 'और बैंकिंग सिद्धान्त' थे। "प्रचलन सिद्धान्त" वालों ने इस तरह अपना मत प्रकट किया कि नोट निकालते समय इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि जितने मूल्य के ये निकाले जायँ उतने अशका सोना रखा जाय। इस विपय की एक जाच की। कमेटी के सामने लार्ड ओवरस्टन ने अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की थी —धातु का प्रचलन अपने असली मूल्य की सत्यता पर स्वय जारी रहेगा किन्तु कागजी द्रव्य का असली मूल्य न

होने के कारण उसके मूल्य की स्थिरता के लिये एक कृत्रिम नियम की आवश्यकता है। कागजी प्रचलन का उपयोग मित व्यय और सुविधा के लिये किया जाता है परन्तु यह आवश्यक है कि कागजी प्रचलन का मूल्य वही रखा जाये जो धातु के सिक्के का है और तब तादाद दोनों की एकसी रहनी चाहिये। करन्सी की सारी गडबड इसी बात के न होने से हुई है। इस बात के न होने पर धातु के प्रचलन का अन्तर और कागजी प्रचलन के मूल्य की घटा बढ़ी दूर हो जायेगी। इसके विरोधी बैंकिंग सिद्धान्त वाले जोर देते थे कि बैंकर को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जो नोट वह निकाल रहा है उनका उपयोग वास्तव में बैंकिंग सौदों के लिए होता है अथवा बाहरी व्यापारिक प्रवाहों के सट्टे में। यदि नोटों की तादाद आवश्यकता से अधिक है, तो अधिक सख्या वाले नोटों को उनके बदले मे उतना रुपया देकर प्रचलन से हटा लेना चाहिये।

इस पर श्रीयुत् गिलबर्ट का कहना है कि प्रादेशिक बैंकों को अपने यहा मे सोने के आवागमन के अनुसार अपने नोट निकालना जारी करना चाहिये। आपकी राय में प्रादेशिक प्रचलन स्थानीय कारणों से अर्थात् फसल की दशा और व्यापार मे घटता बढ़ता है। इस प्रकार ये सिद्धान्त एक दूसरे के विरुद्ध मत के थे, किन्तु इनमें सत्यता अवश्य थी।

प्रचलन के सिद्धान्त वालों का यह कहना बहुत ठीक था कि नोटों के निकालने पर उनके बदले में बैंकों को सोना देना पड़ेगा। अत उन्हें देश के सोने पर कड़ी निगाह रखनी चाहिये। पर उनने यह विचार न किया कि कागजी प्रचलन धातु प्रचलन को बढ़ाता है और नोट तो केवल उसके बदले का रूप है। जिस प्रकार पेड़ की शाखाए प्रशाखाए बढ़ती है किन्तु वास्तव में यह पेड़ की ही उन्नति है इसी प्रकार नोटों का प्रचलन भी एक प्रकार से धातु के प्रचलन की ही अभिवृद्धि है। नोट वास्तव में बदले का रूप है और व्यापार के लिये वह अनिवार्य है। सोने की कमी नोटों के निकालने से पूरी की जा सकती है। यदि यह सिद्धान्त व्यवहार में लायाजाय और नोटो की तादाद उतनी ही हो कि जितनी तादाद का सोना सरक्षित कोष में हो तो कागजी प्रचलन की घटा बढ़ी, जो व्यापार में महत्व पूर्ण कार्य करती है, नष्ट हो जायेगी। इनके विरोधी नोटों का निकालना केवल व्यापारिक कार्य के लिये आवश्यक समझते है। यदि यह सभव हो तो ठीक है। परन्तु प्रत्येक अवसर पर बैंकर इस बात की जाच नहीं कर कर सकता कि लेने वाले को किस लिये नोट की आवश्यकता है और जिन आर्थिक समुदायों की वह वृद्धि करता है उस समय वह उन पर बहुत कम विचार करता है। यह बात ठीक है कि बैंकरों को नोटों से सट्टा करना रोकना चाहिये। इस विवेचन से यह प्रकट होगया कि कोई भी सिद्धान्त व्यवहार में

लाने योग्य नहीं है। इसके उपरान्त फ़ेमर्स कानून जो लार्ड ओवरस्टोन की सी सम्मति देता है। इस प्रकार है :—

१—बैंक आफ इग्लैंड के दो भाग होने चाहियें एक तो नोट प्रकाशन विभाग और दूसरा बैंकिंग विभाग। दोनों का कार्य एक दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र रखा जाये।

२—नोट प्रकाशन विभाग में १७,००० पौंड मूल्य तक के बन्धक रखे जायें और इतने मूल्य के नोट निकाले जायें। सब प्रकार के सिक्के और धातु जिनका हाल मे कोई उपयोग न हो नोट प्रकाशन विभाग में सम्मिलित रहे। यदि १४,०००,०० पौंड से अधिक के नोट प्रकाशित किये जाये तो उनके लिये प्रकाशन विभाग मे उतने ही मूल्य का सोना रहना आवश्यक है।

३—नोट प्रकाशन विभाग में चादी की तादाद सोने के सिक्के और धातु की तादाद के चतुर्थांश से कभी कम न होनी चाहिये।

४—प्रत्येक व्यक्ति नोट प्रकाशन विभाग से नोटों के परिवर्तन में सोना ३ पौंड १७ शि० ९ पेंस प्रति औंस के हिसाब से ले सकता है।

५—इस कानून के पास होनेपर यदि कोई प्रादेशिक बैंक नोट प्रकाशन बद करदे तो हिज मैजेस्टी इन कौंसिल की आज्ञानुसार

बैंक आफ इंग्लैंड को अधिकार हो कि वह अपने नोट प्रकाशन विभाग में इस कमी को पूरा करने के लिये ३ भाग बधक अपने विभाग रख सके और इतने ही परिमाण के नोट निकाल सके।

६—नोट प्रकाशन का व्यौरा, प्रकाशन विभाग में सोने चादी के सिक्के व धातु की तादाद, पूजी की तादाद, और सरक्षित धन बैंकिंग विभाग का द्रव्य और बन्धक आदि विवरण प्रत्येक सप्ताह लदन गजट में प्रकाशित होना चाहिये।

७—बैंक आफ इग्लैंड के नोटों पर किसी प्रकार का रसूम नहीं लगाया जाय।

८—रसूम से मुक्त होने के कारण बैंकको प्रति वर्ष १८०, ००० पौंड सरकार को देना चाहिय।

९—१४००००००० पौंड से ऊपरी की तादाद का लाभ नोटों के निकालने पर का बैंक के हिस्से दारों को बाट देना चाहिये।

१०—सयुक्तराज्य म बैंक के सिवाय कोई व्यक्तिगत नोट नहीं निकाल सकता है कि जिनका रुपया माग पर दिया जाय।

११—इस कानून के पास होने पर कोई बैंकर करन्सी सिद्धान्त के अनुसार रुपया देने वाले नोट नहीं निकाल सकते हैं

जो बैंकर ६ मई सन् १८४४ के पूर्व तक इस प्रकार के नोट निकालते रहे हैं।

१२—इस प्रकार के कोई बैंकर का दिवाला निकल जाय या वह नोट निकालना बन्द कर दे तो फिर दुबारा उसे निकालने की आज्ञा न दी जाय।

१३—प्रत्येक बेंकर को जिन्हें नोट निकालने का अधिकार दिया गया है वे रसूम वसूल करने वाले सरकारी अफ्सर के पास २७ अप्रेल सन् १८४४ से तीन २ मास के नोट प्रकाशन का एक ब्यौरा भेजा करें और कोई बैंकर इस अवधि का उल्लंघन न करे।

१४—यदि मासिक औसत कभी नियत तादाद से बढ जाय तो बैंक को वृद्धि उतनी तादाद जप्त कर लेना चाहिये।

१५—प्रत्येक बेंकर को जिन्हे नोट निकालने का अधिकार दिया गया है प्रति सप्ताह रसूम वसूल करने वाले सरकारी अफसर के पास नोट निकालने का ब्यौरा भेजना चाहिये जो लदन गजट मे प्रकाशित होगा।

१६—प्रत्येक वर्ष रसूम विभाग में हर एक बैकर को अपने अपने नाम भेजना चाहिये।

१७—समस्त बैंकरों को भविष्य में सब प्रकार की हुडी आदि के बेंचने स्वीकार करने व देने आदि का अधिकार है।

किन्तु वे इस प्रकार की हुंडी नहीं निकाल सकते जिसका भुगतान अनियमित समय में किया जाय।

सबसे पहले यह ध्यान देने की बात है कि प्रकाशन विभाग का कार्य बहुत ठीक है। यदि सोना दिया जाय तो बैंकको उसे अवश्य खरीदना चाहिये और इतने सोने के परिवर्तन मे अवश्य नोट निकालना चाहिये। यदि नोट की आवश्यकता जनता को न हो तो वे बैंकिंग विभाग में रक्खे जायें। प्रत्येक नोट जो बैंक से निकाला जाय उसके मूल्य का सोना बैंक सरक्षित रक्खें। केवल १४,०००,००० पौंड के नोट बन्धक द्वारा निकाले जा सकते हैं जिनके लिये सोना रखने का नियम लागू नहीं है। यह विशेष प्रकाशन—'सम्मिलित प्रकाशन" के नाम से कहा जाता ह। ५ वें नियम के अनुसार जिसका प्रकाशन होता है जिसकी क्रमानुसार वृद्धि आजकल १८, ४५०,००० पौंड होगई है। यहा तक कानून प्रचलन सिद्धान्त से अपने को अलग रखता है। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि कानून धीरे २ नोट प्रकाशन का अधिकार प्रादेशिक बैंकों से छीन कर इग्लैंड बैंक को सर्वाधिकार सौंपना चाहता है। प्रादेशिक बैंकों पर कठिन बन्धन बाध कर उनके अधिकारों को छीनता है। इससे कानून का यह मन्तव्य नहीं है कि प्रादेशिक बैंक जो नोट प्रकाशित करते है वे अमान्य है किन्तु समस्त नोटों का प्रकाशन एक मध्यवर्ती शक्तिशाली बैंक से हो जो आसानी से उनके प्रचलन का प्रबन्ध कर सके जो कार्य कई छोटे २ बेंकों से श्रेष्टतर है।

नियम ११, १२ और १३ के अनुसार प्रादेशिक प्रचलन की संख्या घट रही है अर्थात प्रादेशिक बैंक कम होते जा रहे हैं और उनका प्रचलन जो आजकल होता है वह केवल स्थानीय होता है। प्रारम्भ में सन् १८४४ में इंग्लैंड और वेल्स में २७९ बैंकों को ८,६३१,६४७ पौंड तक के नोट निकालने का अधिकार दिया गया था। परन्तु वह धीरे २ कम होते २ उन बैंकों की संख्या ६ पर पहुंच गई और नोट निकालने का अधिकार केवल २३४,४५० पौंड का रह गया है। यह संख्या पूर्व के आधे से भी कम है।

सन् १८४४ के इस कानून पर अब भी वादविवाद होता रहता है। क्योंकि पहले यदि लाभ जनक बताते हैं तो दूसरे सामाजिक स्थिति को नाशकारक प्रकट करते हैं। यहा पर हम इस कानून पर विचार करें कि इसके क्या सिद्धान्त थे और उनकी पूर्ति कहा तक हुई।

श्रीयुत् राबर्ट पिल इस कानून पर इस प्रकार कहते हैं — साधारण व्यक्ति इस कानून से यह समझेंगे कि कानून के कड़े नियम बैंक की शक्ति कम करने वाले है और उन्हें सावधानी से कार्य करने को उत्तेजित करते हैं, जब व्यापारिक संसार में गड़बड़ी पैदा हो देश की आर्थिक अवस्था ठीक हो। किन्तु कानून का उद्देश्य यह है वह उन सभी शिकायतों को दूर करे जिनने सन् १८२५, १८३६ और १८३९ में देश

को दु.ख पहुचाया है । इन शिकायतों को उत्तेजित करने की अपेक्षा उनको दूर करना ही ठीक है।

दूसरे महाशय ने इसके विरुद्ध अपना मत प्रकट किया। आपने कहा कि इसका कार्य सट्टा करने और दिवाला निकालने से बचाने का था अब कानून न उस प्रकार करेगा और न सम्मति देगा। कानून का परिवर्तित रूप साख बढ़ाने का है और वह साख अवश्य बढ़ेगी। तदुपरान्त, हम यहां इस कानून के विषय में कुछ सम्मतियां प्रकट करेंगे जिन से स्पष्ट होगा कि यह कानून देश के लिए लाभकारी हुआ या नहीं। इसने अपने उद्देश्यों की पूर्ति की या नहीं। व्यापारिक शिकायतों को और साख पर इसने कहां तक कार्य किया है। परन्तु हमें उत्तर मिलता है कि, "नहीं"। यह कानून दोनों बातों मे नाकामयाब रहा। सन् १८४० मे कानून के पास होने के ३ वर्ष बाद सन् १८५७ मे और १८६६ में इग्लेंड की ऐसी कठिन स्थिति हो गई थी जिसने त्रास उपस्थित कर दिया था और हरएक सूरत में यह आवश्यकीय जान पड़ा कि कानून का वह नियम मिटा दिया जाय जिसमें वह इग्लैंड बैंक को नियत सख्या से अधिक सख्या पर अधिक बन्धक द्वारा नोट निकलने से मना करता है। अन्त में यह प्रकट हुआ कि कानून का वह नियम रोक दिया गया है और प्रत्येक नोट पर बैंक से सोना मिलता है चाहे उसके प्रति सोना सरक्षित रखा गया हो या न रखा गया हो। इस समय बैंक की आर्थिक स्थिति भयानक होगई थी।

कानून व्यापरिक शिकायतों को दूर करने और बैंक आफ इग्लें
के नोटों की पारिवतन दोनों काया में नाकामयाब हुआ
,सक्षिप्त मे इस नाकामयावी के कारण यह थे ---

किसी ने पूरे तौर से यह नहीं सोचा कि बैंक आफ इग्लें
जनता को प्रत्येक नोट का सोना देने को मजबूर नहीं था किन्
उसे बैंकिंग विभाग के समस्त सरक्षण के प्रति भी सोना देन
पड़ता था और यह सब सोना केवल उसी एक सग्रह से
आना चाहिये ।

कानून ने बैंक को दो हिस्सों में विभाजित कर दिया था
और यह शर्त रखी थी कि समस्त सोना केवल थोड़ा सोन
आवश्यकता के लिये छोड़कर प्रकाशन विभाग मे भेज देना
चाहिये । कानून के बनानेवालों ने यह सोचा होगा कि
यदि यह सब सोना खींच लिया जाय तो बैंक की जवाबदेही
केवल नोटो के रूपमे ही रह जायगी जिससे कर्जदार अपना हाथ
मलते बैठेंगे । किन्तु सोने का यह समस्त सग्रह बैंकिंग विभाग
पर चेक निकाल कर ले लिया जा सकता है, जिससे बैंक की
नोटों की जिम्मेदारी किसी प्रकार कम नहीं होती है। नोटों के
के परिवर्तन का एक उपाय केवल यही था कि चेक लेने से
इन्कार कर देना जिससे थोडे ही समय में बैंक का दिवाला
निकाला जाता ।

कानून ने बैंक के दोनों विभागों को स्वतत्र रखा किन्तु
सरक्षित सोना नोटों के प्रति ही नहीं था किन्तु अन्य सरक्षक

बन्धकों के प्रति भी था। जो सरक्षक बन्धक बैंकिंग विभाग के सम्बन्ध का था।

श्रीयुत् बारिंग ने सन् १८४७ का विग्रह समाप्त होने पर कहा था कि, बन्धक और सरक्षण के कार्यो पर अच्छी तरह से विचार नहीं किया गयाहै। चाहें वे इस कानूनके माननेवाले हों या उसके विपक्षी हों। आपने बताया कि यह समझ में नहीं आता कि ७,०००,००० पौंड का सोना बंक में से निकल जाय और तब प्रचलन के नोटों की सख्या घटने की अपेक्षा बढती जाय।

इस कानून ने उसके बनाने वालों की आशाओं को पुरा नहीं किया। और किसी न किसी प्रकार यह कानून कामपर लाभ दायक नहीं हुआ। यद्यपि कानून में बहुतसी बातें लाभदायक थीं और बहुत से स्थानो पर सशोधन का भी प्रस्ताव हुआ परन्तु बहुत समय से उसके हटा लेने की जोर दार अपील चारों ओर से हुई। कानून सट्टा बन्द करने में असमर्थ रहा। परन्तु अब लोगों की यह साधारण धारणा है कि यह सट्टा दूर नहीं हो सकता और कुछ मितव्ययी रूपमें जारी रहना लाभ-दायक है। अधिक सट्टा समस्त श्रेणी के व्यापारियों के एकत्र हो जाने पर दूर हो सकता है। यदि व्यापारी, बैंकर, साहूकार, बनिया सब एकत्र हो जाय और व्यापारिक ससार के उन्नत मय विचारों को प्राप्त करे जो उनके अनुभव द्वारा व्यापारिक क्षेत्र में प्रकट हों तो सट्टे का अस्तित्व भी नहीं रह सकता।

तदुपरात् कानून कहता है कि, बैंकर अधिक नोटें अपने पास सन्रक्षण में रख कर निकाल सकते हैं। वह सरक्षण बैंक आफ इंग्लैंड के नोटों का होना चाहिये। जो कितना खतर नाक और भद्दा तरीका है। जनता नोटों के सरक्षण रखने के विषय में बैंकरों का किस तरह विश्वास करे। सचमुच यह बन्धन न्यायानुकूल नहीं है। परन्तु इसके बाहर कानून जो कहता है वह ठीक है। यह कहना कि साख के लिए बैंक आफ इंग्लैंड में उतना ही सोने का सरक्षण धन रहेगा जिसका स्पर्श कानून के अनुसार नहीं किया जायगा। केवल उसी समय किया जायगा कि जब उतनी सख्या के नोट प्रचलन में से हटा लिये जायेंगे।

प्रत्येक नोट-१८,४५०,००० पौंड के ऊपर निकालने पर प्रकाशन विभाग में उसका सोना होना चाहिये। इस प्रकार बैंक का सोना कभी कम न होगा जब तक कि बैंक के नोट प्रचलन में से १८४५०००० पौंड से कम की सख्या में न हो जायें। अभी तक इन नोटो की सख्या कम नहीं हुई है। एतदर्थ कठिन से कठिन समय के लिए सरक्षित सोना रहताहै जिसका स्पर्श कभी नहीं होता। कानून की यह सब से मार्के की बात है। इस सरक्षण सुवर्ण पर बहुत कुछ वाद विवाद हुआ। सरकार द्वारा भी इसका विरोध हुआ परन्तु अन्त में बैंक को ही सफलता हुई और कानून यह नियम जैसा का तैसा बना रहा।

सौभाग्य से साम्पातिक स्थिति मजबूत होने के कारण इग्लैंड बैंक के नोटो का प्रचलन बराबर जारी रहा। उन पर किसी का

लेश मात्र भी सन्देह नहीं हुआ। कठिन से कठिन समय पर भी जनता इन नोटों को लेने को तैयार थी केवल बात इतनीही थी कि उनका प्रचलन नियमित सख्या मे था। यदि लोग नोट लेने से इन्कार कर दें और सोना लेने को दौड़े, तब सर्वसाधारण के भुगतान एक दम रोक देने के सिवाय और दूसरे उपाय से उनका रक्षण नहीं हो सकता।

किन्तु इग्लैंड में अब तक ऐसी स्थिति उपस्थित नहीं हुई है। यह सरक्षण इग्लैंड की सामाजिक अवस्था के लिए अत्यत महत्व पूर्ण है। इग्लैंड ऐसा देश जिसका व्यापार विदेश से अधिक होने पर भी उसे विदेश का देना भी रहता है। इसी लिए कभी सोने के आयात की आवश्यकता पर यह सरक्षण बड़ा काम देगा। अन्त में एक बात इग्लैंड के कई स्थानों पर जर्मनी की "लचीली पद्धति" की बड़ी आवश्यकता है। सरकार ने भी शायद इस विषय में कुछ काररवाई की। परतु बैंक आफइग्लैंड ने यह प्रकट किया कि जर्मनी की पद्धति के सपादन कार्य का अधिकार उसे दिया जाय। वह इसका प्रबन्ध करेगा परन्तु अभी तक सरकार और बैंक दोनों मे निपटारा नहीं हुआ है। यह बात अवश्य है कि जर्मनी की बैंकिंग स्थिति और इग्लैंड की बैंकिंग स्थिति में में बड़ा अन्तर है। बर्लिन ससार के लिए सोने का स्वतत्र बाजार नहीं है। और वह इग्लैंड के लिए बिलकुल हानिकारक है। इग्लैंड सोने का स्वतत्र बाजार है और कई विद्वान अंगरेजों की राय है कि जर्मनी में जो कर नियत हैं और सदैव जो अन्य बन्धन लगाये जाते हैं इग्लैंड के लिये बिलकुल हानिकारक हैं।

प्रकाशक:—

अमरचन्द वैद,
सरस्वती ग्रन्थमाला कार्यालय
बेलनगंज, आगरा ।

मुद्रक:—

मोहनलाल वैद,
"सरस्वती प्रिंटिंग" प्रेस,
बेलनगंज, आगरा ।